दिसंबर 2025

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

वर्ष 89

अंक – 12 । प्रति – ₹ 25 । ₹ 300 वार्षिक

8 ▸ आत्मजागरण का राजमार्ग
19 ▸ कैसे करें स्वयं का सृजन
29 ▸ बच्चों को मन से परिचित कराएँ
61 ▸ सद्गुण और समृद्धि साथ-साथ

कर्मयोगी की मानसिक स्थिति

निस्पृह होकर अनासक्त मन से संसार के कल्याण के लिए कर्म करते रहना कर्मयोगी का लक्षण है। ऐसे कर्मयोगी दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे जो गृही होकर कर्मयोग की साधना करते हैं। घर में रहो चाहे घर छोड़ दो, संसार के कल्याण के लिए कर्म अवश्य करते रहना चाहिए। भगवान के लिए कर्म, लोक-कल्याण के लिए कर्म, यह ध्येय रखना और इस पर चलना कर्मयोगी का यही साधन है।

गृही और गृह-त्यागी कर्मयोगी के दो रूप होते हुए भी दोनों में कोई अंतर नहीं है। कर्मयोगी को लोक-कल्याण के लिए जब गृह-त्याग की आवश्यकता होती है तब वह गृह-त्यागी हो जाता है और जब गृहस्थ जीवन में रहकर लोक-कल्याण की अधिक संभावना रहती है तब वह गृही होकर रहता है। गृहस्थ होना और गृह त्यागना उसकी लोक-सेवा या लोक-कल्याण के अंग होते हैं। मुख्य उद्देश्य तो लोक कल्याण ही होता है। फिर भी गृह-त्याग की अपेक्षा लोक-कल्याण साधना में गृहस्थ होने का अधिक महत्त्व है।

(अखण्ड ज्योति, दिसंबर-1950)

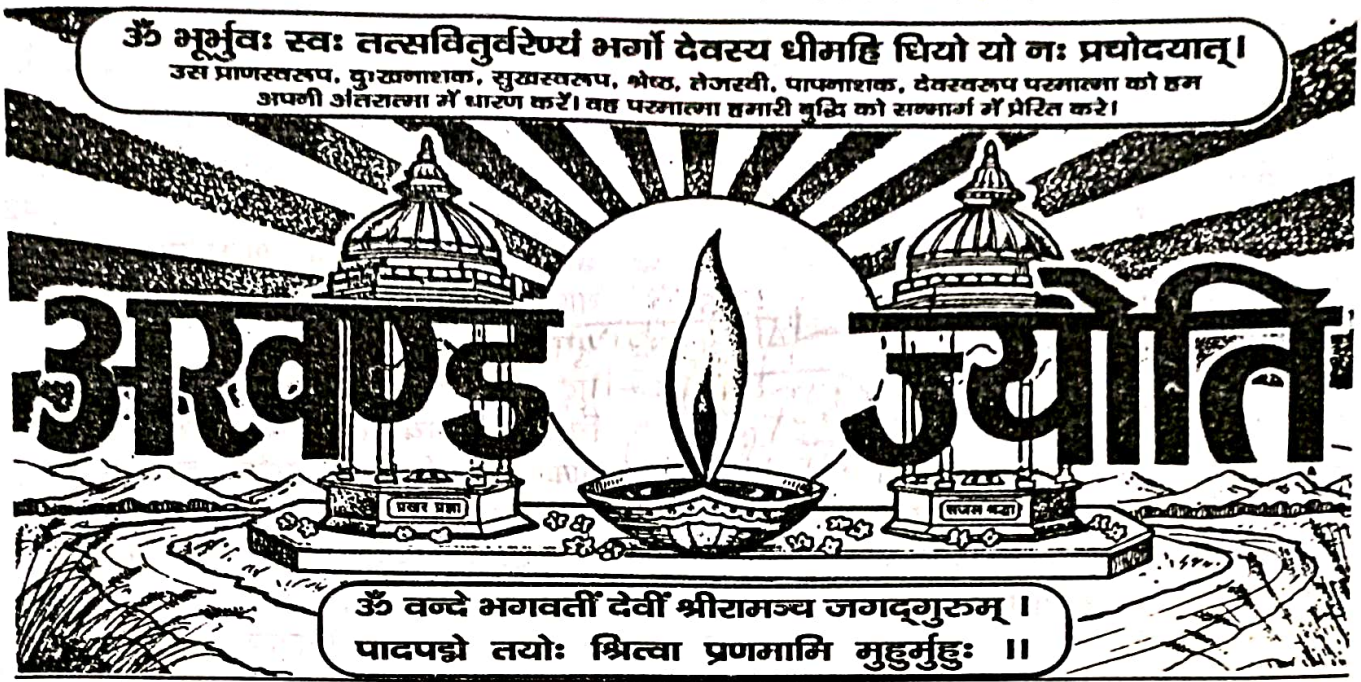

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291, 7534812036
7534812037, 7534812038, 7534812039
व्हाट्सएप नं. 9927086290
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ई-मेल :
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

वर्ष	:	89
अंक	:	12
दिसंबर	:	2025
मार्गशीर्ष-पौष	:	2082
प्रकाशन तिथि	:	01.11.2025

वार्षिक चंदा

भारत में सामान्य डाक से	:	300/-
विदेश में	:	2800/-

आजीवन (बीसवर्षीय)

भारत में सामान्य डाक से	:	6000/-

वंदनीया माताजी

(क्रमशः)

वंदनीया माताजी—हम सबकी माँ हैं। 'माँ' यह एक शब्द स्वयं में महाचमत्कारी, अतिशक्तिशाली महामंत्र है। इसके उच्चारण मात्र से प्रसन्नता, पावनता, सुरक्षा-संरक्षण सब कुछ बिना माँगे मिल जाता है। इस शब्द में समायी उनके दुग्ध-अमृत की धार स्मरण मात्र से वात्सल्य प्रेम की रसानुभूति में भिगो देती है। माँ की गोद अपनी संतानों का भार उठाने में धरती से अधिक सक्षम है। सुरक्षा व संरक्षण देने वाली उनके आँचल की छाया आकाश से कहीं अधिक व्यापक है। हम सबकी माँ, हम सबके लिए अंतर्जगत का अनंत प्रकाश समेटकर धरती पर आईं। हम सबके भौतिक-दैविक एवं आध्यात्मिक भय-ताप हरण करने के लिए शांतिकुंज के वनक्षेत्र में रहीं। जब वे यहाँ पर मथुरा में अपना समूचा परिवार, सगे संबंधियों को छोड़कर आई थीं, तब यह शांतिकुंज वनभूमि ही था। इसके आस-पास दिन के उजाले में भी वन्यपशु ही घूमते थे, परंतु वे तो जैसे उनकी भी माँ थीं। न उनको किसी का भय था और न उनसे किसी को भय था। उन्होंने यहाँ पर रहकर गायत्री महामंत्र के 24 महापुरश्चरण संपन्न किए। उनके द्वारा संपन्न की गई इस महापुरश्चरण साधना की नियम-व्यवस्था, विधि-विधान सभी कुछ भिन्न था। यहाँ उन दिनों रहने वाली चौबीस देवकन्याएँ इस साधना में उनकी सहयोगी-सहायक बनीं। आदिशक्ति ने अपनी समस्त चौबीस शक्ति-पुत्रियों के साथ यह महासाधना पूर्ण की। इस समर्थ गायत्री-साधना की आध्यात्मिक ऊर्जा ने हिमालय व गंगा की आध्यात्मिक ऊर्जा के साथ मिलकर शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ के रूप में प्रतिष्ठित व प्रकाशित किया। ❑

विषय सूची

❊ आवरण—1 1
❊ आवरण—2 2
❊ वंदनीया माताजी 3
❊ **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
जीवनप्रदाता जंगल का संरक्षण 5
❊ आत्मजागरण का राजमार्ग 8
❊ मुक्ति का पथ 10
❊ समत्वं योग उच्यते 11
❊ भावनात्मक पीड़ा का समाधान 14
❊ **पर्व विशेष—गुरु गोविंद सिंह जयंती**
निश्चय कर अपनी जीत करौं 16
❊ कैसे करें स्वयं का सृजन 19
❊ नारी जागरण 21
❊ मन के मालिक बनें 22
❊ आत्मसंपदा 24
❊ मन:स्थिति बदले तो परिस्थिति बदले 26
❊ जहाँ चाह, वहाँ राह 27
❊ बच्चों को मन से परिचित कराएँ 29
❊ अस्मिता की रक्षा के लिए युद्ध 31
❊ आहार कैसे लें? 33
❊ क्रांतिदर्शी महर्षि अरविंद 36
❊ वृक्ष-वनस्पतियों का अद्भुत संसार 39
❊ प्रभावी संचार के सूत्र 42
❊ **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—200**
वाल्मीकि रामायण में निहित मानव मूल्य 44
❊ **युगगीता—307**
मूढ़ भाव है तामस भाव 48
❊ **विश्वविद्यालय परिसर से—246**
मानवता के भविष्य को निर्धारित करता विश्वविद्यालय 50
❊ **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
उपासना-साधना-आराधना (गतांक से आगे) 55
❊ **साधना शताब्दी-विशिष्ट लेखमाला**
सद्गुण और समृद्धि साथ-साथ 61
❊ **अपनों से अपनी बात**
नवजाग्रति का आधार है अखण्ड ज्योति 64
❊ स्नेह-समर्पण की मर्यादा (कविता) 66
❊ आवरण—3 67
❊ आवरण—4 68

आवरण पृष्ठ परिचय

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या॥

दिसंबर, 2025 व जनवरी, 2026 के पर्व-त्योहार

सोमवार	01 दिसंबर	मोक्षदा एकादशी/गीता जयंती	बुधवार	14 जनवरी	षट्तिला एकादशी/मकर संक्रांति
गुरुवार	04 दिसंबर	दत्तात्रेय जयंती/पूर्णिमा	शुक्रवार	23 जनवरी	वसंत पंचमी/नेताजी जयंती
सोमवार	15 दिसंबर	सफला एकादशी	रविवार	25 जनवरी	सूर्य सप्तमी
बुधवार	31 दिसंबर	पुत्रदा एकादशी	सोमवार	26 जनवरी	गणतंत्र दिवस
शनिवार	03 जनवरी	पूर्णिमा व्रत	गुरुवार	29 जनवरी	जया एकादशी
मंगलवार	06 जनवरी	संकष्ट चतुर्थी	शुक्रवार	30 जनवरी	शहीद दिवस
सोमवार	12 जनवरी	स्वामी विवेकानंद जयंती/युवा दिवस			

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

►'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◄

विशिष्ट सामयिक चिंतन

जीवनप्रदाता जंगल का संरक्षण

हमारी पृथ्वी पर वनों-वृक्षों की मौजूदगी मनुष्य के प्रकट होने से करोड़ों वर्ष पहले से है। वनों ने ही प्रारंभिक जीव-जंतुओं को जिंदा रहने के संसाधन मुहैया कराए।

आदिकालीन बैक्टिरिया के बाद पेड़-पौधे ही थे, जिन्होंने शुरुआती पृथ्वी के वायुमंडल में मौजूद जहरीली गैस कार्बन-डाइऑक्साइड को सोखकर और ऑक्सीजन पैदाकर थलचरों के लिए साँस लेने योग्य वातावरण और आधारभूमि तैयार की।

जल से जमीन में आने के लिए वनस्पतियों को कड़ा संघर्ष करना पड़ा। उन्हें खुद को उस प्रणाली के अनुरूप बनाना पड़ा जो उनके भार को वहन कर सके, उनके पूरे तंत्र में जल-संचरण कर पोषक तत्त्वों को पहुँचा सके, उन्हें सूखने से बचा सके और सूर्य की गरमी और तापमान से सुरक्षा प्रदान कर सके।

अनुकूलन की यह प्रक्रिया कठिन न होती तो पृथ्वी के भू-वैज्ञानिक इतिहास में वनस्पतियाँ बहुत पहले ही जमीन पर अपनी जड़ें जमा देतीं, लेकिन यह सब इतनी सरलता से नहीं हुआ। सागर से चट्टानी जमीन तक की यात्रा में वनस्पतियों को लाखों वर्ष लगे।

जमीन पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराने वाली प्रथम वनस्पति शैवाल अथवा काई थी, जिसने अपने उद्गम-स्थल समुद्र से भूमि की ओर पारगमन कर ठोस सतह पर अपनी जड़ें जमाईं। यहीं हरे शैवाल तब पृथ्वी के प्रथम पादप के तौर पर लाखों वर्षों तक छाए रहे और यहीं से पेड़-पौधों की विकास-यात्रा शुरू हुई।

अब से करीब 18 करोड़ वर्ष पहले पेड़-पौधे अस्तित्व में आए, जिन्होंने धीरे-धीरे जमीन को आच्छादित करना शुरू किया। उनकी यह यात्रा यहीं पर खतम नहीं हुई। वृक्षों की लंबी और मोटी जड़ों ने धरती की चट्टानी सतह को तोड़कर ऐसी मिट्टी तैयार की, जिसमें नई वनस्पतियों की प्रजातियाँ तथा दूसरे पेड़ विकसित हो सकें। वनस्पति जगत् का यह ऐसा क्रम-विकास था, जिसने बड़े और विविध जमीनी जंतुओं के विकसित होने में अहम भूमिका निभाई।

आज हम अपने आस-पास पेड़-पौधों को देखने तथा उन पर निर्भर रहने के इतने अभ्यस्त हो चुके हैं कि यह सोचना भी कठिन लगता है कि यदि ये पेड़-पौधे, जंगल आदि न होते तो जीव-जंतु और मनुष्य का अस्तित्व भी न होता। यदि वनस्पतियों और जीव-जंतुओं का विकास एक साथ हुआ होता। दुर्भाग्य देखिए कि इन्हीं जीवनदायी जंगलों को मनुष्य ने बहुत बेरहमी से कुचला और अब भी उन्हें अमानवीयता से नष्ट कर रहा है।

चंद सदियों पहले तक भी पृथ्वी का ज्यादातर भू-भाग जंगलों से ढका था, लेकिन आज 4 अरब हेक्टेयर भू-भाग पर ही जंगल बचे हैं। पृथ्वी का कुल मिलाकर जो जमीनी भाग है, यह उसका 30 फीसदी ही है। 11,000 वर्ष पहले कृषि की शुरुआत हुई थी, तब से दुनिया भर के जंगल सिमटकर करीब 40 फीसद तक रह गए हैं।

इनमें तीन-चौथाई नुकसान सिर्फ पिछली दो सदियों में हुआ, जब खेती और लकड़ी के लिए

जंगलों का सफाया किया गया। इससे भी बड़ा नुकसान पिछली आधी सदी में हुआ, जिसके चलते धरती की हरीतिमा बहुत कम हो गई।

इसके लिए जनसंख्या का दबाव भी एक कारण रहा, जो 1950 में 2.3 अरब से लेकर अब करीब 7 अरब के पार पहुँच चुकी है। दुनिया के मूल वन क्षेत्र का लगभग आधा हिस्सा, करीब 3 अरब हेक्टेयर नष्ट हो चुका है। यह सिलसिला आज भी जारी है। पिछले कुछ दर्जन वर्षों में 1.2 करोड़ हेक्टेयर जंगल, जो कि नेपाल के क्षेत्रफल के बराबर है, का शहरों के लिए, खेती के लिए, लकड़ी के व्यवसाय तथा अन्य मानवीय जरूरतों के लिए खातमा किया जा चुका है।

जंगलों को पृथ्वी के फेफड़े यों ही नहीं कहा जाता। ये कार्बन-डाइऑक्साइड (जलवायु-परिवर्तन के लिए प्रमुख रूप से जिम्मेदार गैस) को सोखकर हमारे लिए जीवनदायिनी ऑक्सीजन पैदा करते हैं। जंगल ऐसे विशाल भंडार हैं, जिनमें 830 अरब टन कार्बन जमा है। जीवित पेड़ कार्बन-डाइऑक्साइड तो सोखते ही हैं, जब ये काटे जाते हैं, तब ये कार्बन का स्रोत बन जाते हैं।

पिछले दशक में उष्ण-कटिबंधीय क्षेत्र में हुए वन-कटान के कारण बड़ी मात्रा में संचित कार्बन मुक्त हुई, जो मानवीय गतिविधियों के कारण वायुमंडल में उत्सर्जित कार्बन-डाइऑक्साइड के एक-चौथाई के बराबर है।

ये जंगल ही हैं, जो हमारी नदियों को पोषित करते हैं, जो कि दुनिया के 50 फीसद बड़े शहरों की जनसंख्या के लिए जरूरी हैं। जमीन की उर्वरता बनाए रखने में जहाँ जंगलों की खास भूमिका है तो वहीं विनाशकारी तूफानों, बाढ़ के प्रभावों को कम करने में इनका योगदान रहा है। जमीन को जमाए रखने और भू-क्षरण को रोकने में जंगल ही मददगार हैं।

जंगल जमीन पर जैव-विविधता के अद्भुत पारिस्थितिकीय तंत्र हैं, जो जंतुओं, कीटों तथा वनस्पतियों की 50 फीसद से भी ज्यादा प्रजातियों का घर हैं। जल-प्रवाह को जंगल ही नियंत्रित रख कर जल-विभाजक का बचाव करते हैं। जलवायु चक्र में बदलाव लाने, हवा में शीतलता लाने तथा जंतुओं व वनस्पतियों की लाखों प्रजातियों को आवास प्रदान करने में जंगल बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। जंगल वाष्पीकरण का प्रमुख कारक हैं, जिस माध्यम से वृक्ष, जमीन और वायुमंडल में जलवाष्प की अदला-बदली होती है।

संयुक्त राष्ट्र के एक अनुमान के मुताबिक दुनिया के करीब 1.6 अरब लोग आजीविका के लिए जंगलों पर निर्भर हैं। करीब 3 अरब लोग ऊर्जा के मुख्य स्रोत के तौर पर जंगलों पर निर्भर रहते हैं। जंगल हर साल अरबों डॉलर का कच्चा माल मुहैया कराकर दुनिया की अर्थव्यवस्था को सीधे तौर पर फायदा पहुँचाते हैं।

उदाहरण के लिए लकड़ी-आधारित वस्तुएँ और इमारती लकड़ी, कागज और पैकेजिंग के लिए लुगदी, ईंधन के लिए जलावन आदि। इतना ही नहीं, जंगल हमें भोजन, दवा, मसाले, गोंद, रेजिन और तेल उपलब्ध कराते हैं। जंगल के उत्पाद इमारती लकड़ी से लेकर फर्नीचर और किताबों तक में प्रयुक्त होते हैं।

इंटरनेट के इस युग में सूचनाओं का प्रवाह अब भी कागज पर निर्भर करता है। जंगलों के नष्ट होने की वजह से करोड़ों वर्ष पुरानी जैव-विविधता संबंधी प्राकृतिक विरासत खतरनाक रूप से नष्ट हो रही है।

पिछली एक सदी में जहाँ दुनिया की आर्द्रभूमि (वेट लैंड) खतम हो चुकी है, वहीं 80 प्रतिशत घासभूमि (ग्रासलैंड) भू-दुर्दशा से गुजर रही है। शहरी विकास के लिए, अक्वा कल्चर के लिए

दुनिया के मैंग्रूव वनों को काटा जा रहा है। समुद्र में मूँगा-भित्तियाँ अस्तित्व के संकट से जूझ रही हैं।

हर साल वैश्विक वन कटाई के चलते 1.3 करोड़ हेक्टेयर जंगल (पुर्तगाल जितने आकार के) नष्ट कर दिए जाते हैं।

वर्ल्ड रिसोर्स इन्स्टीट्यूट के मुताबिक इस समय दुनिया में वृक्षों की एक लाख प्रजातियाँ हैं। संयुक्त राष्ट्र के पर्यावरण कार्यक्रम के वर्ल्ड मॉनिटरिंग सेंटर ने पुष्टि की है कि तेजी से समाप्त होते जंगलों के कारण जीव-जंतुओं की 8000 प्रजातियाँ खतरे में हैं। इनमें से 976 तो विलुप्त होने के कगार पर हैं। इस समस्या को जितना जल्दी खतम किया जा सके, उतना ही अच्छा है। जंगलों को बचाना हमारा मुख्य कर्त्तव्य है। ❑

महादेव गोविंद रानाडे पुणे के न्यायाधीश थे। एक बार वे रेलगाड़ी से यात्रा कर रहे थे कि रेलगाड़ी किसी स्टेशन पर अधिक समय के लिए रुकी। महादेव रानाडे उस अवधि में उठकर स्टेशन पर उतर गए। उनकी अनुपस्थिति में एक अँगरेज उसी डिब्बे में चढ़ा, जिसमें महादेव भाई का सामान रखा था। उसने अन्य यात्रियों से पूछा कि सामान किसका है तो उन्होंने बताया कि एक भारतीय सज्जन का है। यह सुनकर उस अँगरेज ने वह सामान रेलगाड़ी से नीचे उतरवा दिया। चूँकि उन दिनों भारत में अँगरेजों का शासन था, इसलिए उसके इस दुर्व्यवहार का प्रतिरोध करने का साहस किसी को नहीं हुआ।

महादेव भाई के दोबारा लौटने पर उन्हें पूरी बात पता चली, तब उन्होंने अपना सामान पुनः रेलगाड़ी में रखवा दिया। उन्हें देखने पर अँगरेज को भान हुआ कि वे तो पुणे के न्यायाधीश हैं तो उसने अपने व्यवहार के लिए क्षमा माँगी। अन्य यात्रियों ने महादेव भाई से पूछा—"वे इतनी सहजता से सारे दुर्व्यवहार को कैसे सहन कर गए।" तो वे बोले—"भाई! मैं तो गांधी जी के असहयोग-आंदोलन का समर्थक हूँ। यदि कोई अन्य क्षुद्रता पर उतर आए तो हमें भी वैसा करने की आवश्यकता नहीं है। अनीति के साथ असहयोग ही सबसे बड़ा विरोध है।"

पुणे लौटने पर उन्होंने अपनी नौकरी छोड़कर आजादी के आंदोलन का साथ अपना लिया।

आत्मजागरण का राजमार्ग

अध्यात्म जिस विषय से शुरू होता है, वह एक पीड़ा ही है। खुद को महान जागरण से वंचित रखने की पीड़ा, स्वयं की प्रवृत्तियों से बँधे रहने की पीड़ा, संसार को कुछ मान उस अनुसार कर्म करते रहना, परंतु अपनी आत्मा की न सुनने की पीड़ा। पीड़ा से यह जगत् आच्छादित है, परंतु यह पीड़ा मूलतः अज्ञान की है; जिसे समझने से पहले हम यह समझ लेते हैं कि इस पीड़ा का स्रोत क्या है।

महामानवों एवं दैवी-आत्माओं ने भी इस पीड़ा को सहा है, उन्हें विश्वास हुआ कि उनके भीतर कोई ऐसा तत्त्व है, जो सुषुप्ति से जाग्रति की दिशा में बढ़ना चाहता है। हृदय की दिव्य पुकार को जिसने भी सुना है, उसे यही लगा कि यह तो मेरे अंतःकरण का करुण रस है, मेरी प्रतिभा का अमृत-सरोवर है तथा मेरे जीवन का ध्येय भी।

पीड़ा उस मनोभूमि से आती है जो विश्व का कल्याण तो देखती है, परंतु अपने भीतर उस तत्त्व को उजागर नहीं कर पाती, जिसके द्वारा विश्व का कल्याण हो सके। उसे ही अध्यात्म का विषय कहेंगे। जिस हृदय ने यह स्वीकार कर लिया कि हमें एकमात्र सत्य का अनुशीलन चाहिए तथा उस अनुसार आगे बढ़ने की रीति-नीति, वह यह भी समझेगा कि मार्ग अपने कर-कमलों द्वारा कुछ यों बनाना है कि उसके द्वारा विश्व का कल्याण तो हो ही, साथ में अपनी आत्मजाग्रति भी हो सके। इसे ही सच्चे अध्यात्म का सुफल कहेंगे।

प्रेरणा को स्ववर्ती करना, मान्यताओं को उस अनुसार परिष्कृत स्वरूप देना, चाल-चलन से परे अपनी आत्मा की आवाज सुनने का प्रयत्न करना, यही वह क्रियापद्धति है जिसके द्वारा आदमी का अंतस् अपने दिव्य मनोभावों को प्रकट करता है तथा उसका जीवन सुधरता चला जाता है। जिस किसी को यह उपलब्धि प्राप्त है, वह फिर यह समझ ले कि अंतःकरण की आवाज को जागरूक मनुष्य ही पहचान पाते हैं। शेष के लिए वह संसार के शोर-व्यापार में गुम तथा किसी प्रकार के अभीप्सा-चिंतन से वंचित ही बनी रहती है।

आत्मजागरण के बाद बल एवं पुरुषार्थ अपने ही संस्कारों से तथा अपने संकल्प से ही प्राप्त होते हैं। जीवन का यह सत्य हर कीमत पर स्वीकारने योग्य है कि जिस मनुष्य का अंतःकरण विकसित अवस्था में होता है, उसे हर दुविधा से पार पाने तथा अपनी शक्ति को किसी उत्कृष्ट प्रयोजन में लगाने में देर नहीं लगती। उसका विषय चेतना की उन्नतावस्था से स्वयं जिस किसी पथ पर चले, उसका पूर्वोक्त अनुसंधान कर पाता है। उसकी मनोभूमि जड़ता की नहीं, सत्य की पक्षधर होती है तथा उसका चिंतन आदर्श एवं महान कहलाता है।

जीवन के इसी सौभाग्य को ज्ञानियों ने विभिन्न अर्थों में पिरोया है तथा जो निष्कर्ष प्राप्त हुए, उन्हें शेष मनुष्यता के लिए अर्पण-स्वरूप रख दिया है। चाल-चलन से परे जो अपनी गहराई को देख सके, जिसकी चेतना में बल है, उत्साह है, ओज है वह व्यक्ति कभी भी दूसरों की देखा-देखी मार्ग का चयन नहीं करता है तथा उसका

जीवन किसी उत्कृष्ट प्रेरणा का वाहक तथा महान स्वावलंबन से अभिपूरित होता है। इसे ही दैवी-चरित्र की प्रतिष्ठा तथा अंतस् के परिष्कार का सुदृढ़ पथ कह सकते हैं।

हमें अपने भीतर उस तत्त्व को उजागर करना चाहिए, जिसके द्वारा जीवन सहज हो। जीवन की सभी कठिनाइयाँ मिट जाएँ तथा वह परिष्कार की यात्रा पर चल पड़े।

जीवन थोड़े से दिनों के लिए ही मिला है, क्यों न इसे भावातिरेक में व्यर्थ करने के स्थान पर किसी उत्कृष्ट-प्रेरणा एवं आदर्श जीवन क्रम का संवाहक बनाया जाए तथा उसे सच्चे अर्थों में आत्मा की अभीप्सा के अनुरूप गति-चक्र प्रदान किया जाए?

ऐसी अभिलाषा होने पर चेतना अपने स्वभाव अनुकूल हमें निर्देशित करती है तथा हमारा जीवन किसी उच्चतर ध्येय की पूर्ति में संलग्न होता है। जिस आत्मा में ऐसा प्रकाश है, उसे किसी भी प्रकार अपनी अंतर्पुकार को अनसुना नहीं करना चाहिए। यही आत्मजागरण का राजमार्ग है।

यदि सभी मनुष्य इस मार्ग पर चलें तो देखते-ही-देखते दुनिया एक सत्परिणाम को उपलब्ध होगी, तथा उसे जीवन में नवक्रांति का अवसर प्राप्त होगा। ऐसी अवस्था में जीवन का एक ही ध्येय रह जाएगा, उत्कृष्ट एवं महान बनने का पुण्य-अभियान तथा जीवन में समग्र-परिष्कार की ज्योति।

जिन्हें इस मार्ग पर चलना अभीष्ट हो वे समझें कि पहले अपने अंत:करण को गहन मंथन के उपरांत सुधारना पड़ता है एवं फिर चरित्र-चिंतन की दुर्बलता को मिटा किसी आदर्श जीवनक्रम के बल पर अपनी प्रतिभा का विकास करते हुए उच्चतर ध्येय की पूर्ति में संलग्न होना होता है। इसके द्वारा विश्व-कल्याण एवं आत्मजागरण के दोनों ही लक्ष्य पूर्ण होते हैं तथा जीवन महान आदर्शों का पर्याय कहलाता है। यही अपनी आत्मिक पीड़ा का समाधान है। ❑

राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए शुकदेव बोले—"एक राजा आखेट करते हुए भटककर एक बहेलिए की झोंपड़ी में पहुँच गया। गंदगी व बदबू से भरी उस झोंपड़ी में आश्रय पाने के लिए कुछ देर को बैठा तो फिर उसी का आदी हो गया।" यह सुनकर राजा परीक्षित बोले—"भगवन्! वह कैसा मूर्ख राजा था, जो उस गंदगी से भरी कोठरी से आसक्त हो गया।"

शुकदेव बोले—"राजन्! यह कथा मात्र उस राजा की नहीं, वरन प्रत्येक इनसान की है। मल-मूत्र से भरी इस काया से मनुष्य इतनी आसक्ति विकसित कर लेता है कि फिर वहीं बँधकर रह जाता है।" राजा परीक्षित को यह सुनते ही वैराग्य पैदा हो गया।

मुक्ति का पथ

हम जिस केंद्र से संचालित होते हैं, वही हमें परिभाषित करता है। जब मनुष्य कामना को अपना एकमात्र आधार बना लेता है, तब उसे यह बोध नहीं हो पाता कि उसका जीवन-लक्ष्य क्या है। भीतर की तड़पन ही सही दिशा दिखाने में समर्थ है, परंतु यदि वही विस्मृत कर दी जाए तो इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या होगा?

कामना के पुतले बनकर जीने से अच्छा है अपनी आत्मा का प्रतिनिधि बनकर जिया जाए। ऐसा करने वाले धन्य होते हैं तथा उनका जीवन पूर्णता प्राप्ति हेतु बढ़ चलता है। कामना का यथार्थ समझना आवश्यक है। हम क्यों उन विषयों में उलझे रहते हैं, जिनसे हमें कुछ मिलता नहीं?

हमारी दृष्टि सत्य के स्थान पर संसार को ही छानती रहती है। इसका कारण अज्ञान है, जो विविधरूपेण प्रकट होता है। यदि उसे निरस्त कर दिया जाए तो अद्‌भुत सौभाग्य के दर्शन होंगे। जितने भी मतभाव हैं, उनकी उपस्थिति बताती है कि अभी चेतना जाग्रत नहीं हो पाई। जैसे-जैसे वह अपने बंधन त्यागेगी उससे महान सृजन की संभावना जन्म लेगी।

पहले स्वरूप-बोध करना होगा, तदुपरांत आत्मप्रेरणा द्वारा चालित समस्त क्रिया-व्यवहार होने लगेगा। मुक्ति इसी में निहित है। अपनी वृत्तियों को अंतर्मुखी किए बिना भ्रम-जाल बना रहता है। जिन भी चीजों से हम जुड़े हैं, वे हम पर विस्तृत प्रभाव डालती रहती हैं।

ऐसे में चिंता-उद्वेग बने रहेंगे तथा शांति दुर्लभ होगी। यहीं पर किसी उच्च सत्ता का सान्निध्य हमें चाहिए। उसी की कृपा से देहजन्य विकार मिटेंगे तथा सुख-लालसा जो वस्तु-व्यक्ति-विचार के रूप में प्रकट होती है, टल सकेगी।

यह स्थिति आश्चर्यजनक है तथा इसमें हमारा कायाकल्प हो जाएगा। जिन्होंने अध्यात्म के मूल तत्त्व को अनुभव किया, उन्हें ही श्रद्धा ने संबल दिया।

कष्ट-कठिनाइयों में एकनिष्ठ बने रहना सीख लेने पर उन्नति एवं सफलता हमारे कदम चूमेंगे तथा सभी प्रयोजन पूर्ण होंगे। स्वार्थ एवं दुश्चक्र की क्रीड़ा प्रेम एवं उत्सर्ग का पथ रोके तो इससे कुंठा जन्म लेगी। आप विवेकपूर्ण रहें, उस दैवी सत्ता पर सब छोड़ दें, आनंदित रहें। ❑

युग निर्माण संगठन की आवश्यकता और गतिविधियों की तीव्रता आँधी और तूफान की तरह बढ़ रही है। प्रवाह और उफान तो कोई दिव्य शक्ति ला रही है, उसकी चिंता नहीं करनी है। चिंता इतनी भर करनी है कि विश्व इतिहास के इस सबसे महत्त्वपूर्ण अभियान को सँभालना, व्यवस्थित और नियंत्रित करना जिस प्रकार संभव हो—उसका प्रबंध करना चाहिए। ***—परमपूज्य गुरुदेव***

समत्वं योग उच्यते

जीवन का ताना-बाना द्वंद्वों से मिलकर बनता है, जिसमें सुख भी है और दु:ख भी। मान भी है और अपमान भी। लाभ भी है और हानि भी। सरदी भी है और गरमी भी। जीवन भी है और मरण भी। द्वंद्वों की इस सृष्टि के मध्य अनुभव लेते हुए जीवात्मा जीवन की पाठशाला में आवश्यक सीख ग्रहण करते हुए अस्तित्व के मर्म को समझ पाती है तथा अपने परम लक्ष्य की ओर बढ़ती है। अत: द्वंद्व जीवन के यथार्थ अनुभव हैं, मार्ग हैं और मंजिल तक ले जाने वाले पाथेय भी। जीवन के द्वंद्वों के मध्य सम रहना ही जीवन का सार है। जिसने यह कला सीख ली, समझो वह जिंदगी का असली खिलाड़ी बन चला।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण समता की यही शिक्षा शोक-संतप्त अर्जुन को देते हैं। गीता में स्थितप्रज्ञता का पूरा दर्शन इसी के इर्द-गिर्द खड़ा है। इसी जीवन दर्शन के बल पर योगीजन दु:खों का हरण करने वाले योग को साधते हैं तथा जीवन में भारी-से-भारी संकट एवं दु:ख-कष्ट के मध्य भी चलायमान नहीं होते, अकंपित रहते हैं।

समता का यह दर्शन सुनने में जितना सरल लगता है, यथार्थ में उतना ही कठिन भी है, लेकिन किसी अंश में भी यदि यह जीवन में उतर चले तो समझो कि यह जीवन सध चला, मानव जीवन धन्य हो चला।

इसका अभ्यास जीवन के समग्र स्वरूप का बोध रखते हुए, इसके स्थूल से सूक्ष्म स्वरूप की ओर बढ़ते हुए किया जा सकता है—जिसमें भूख-प्यास और सरदी-गरमी के अभ्यास हमारे नित्य जीवन के मूलभूत अनुभव रहते हैं। शरीर व इंद्रियों की संयम-साधना के साथ हम जिसका अभ्यास कर सकते हैं।

आहार मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता है, लेकिन यदि स्वाद के वशीभूत होकर इसके अतिवादी एवं हानिकारक स्वरूप का मनुष्य आदी हो जाता है तो अपने स्वास्थ्य को चौपट कर जीवन को नरक बना देता है। इस स्थिति में न तो स्वाद के वशीभूत होकर असंयमित आचरण करना और न ही भूखे-प्यासे रहकर शरीर को अनावश्यक रूप से तपाना-सुखाना, आहार संबंधी समता का अभ्यास माना जा सकता है—जिसके साथ जीवन में स्वास्थ्य के साथ सुख एवं दीर्घायुष्य के वरदान को अनुभव किया जा सकता है।

सरदी-गरमी हमारे जीवन के नित्यप्रति के अनुभव हैं। सरदी में राहत के लिए गरमी की आवश्यकता अनुभव होती है। जितना ताप आवश्यक हो, उसकी व्यवस्था करते हुए जीवनयापन किया जा सकता है, लेकिन आवश्यकता से अधिक दिन भर हीटर, ब्लोअर या तंदूर आदि के सामने बैठे रहना इस व्यवस्था के प्रयोजन के औचित्य पर प्रश्नचिह्न लगा देते हैं और व्यक्ति एक तरह से इस ताप का दास बन जाता है।

चौबीसों घंटों ताप में रहने पर व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। ताप के संदर्भ में आवश्यकता एवं औचित्य के मानकों की अनदेखी जीवन को एकाकी एवं रुग्ण बना देती है। गरमी के दिनों में बढ़ते ताप के साथ शीतलता की आवश्यकता अनुभव होती है।

इसकी भी उचित व्यवस्था करते हुए गरमी के मौसम को पार किया जा सकता है।

आजकल इस हेतु तमाम विकल्प उपलब्ध हैं, जिनमें ए.सी. की व्यवस्था प्रमुख है, लेकिन गरमी से राहत के नाम पर दिनभर ए.सी. में बैठे रहना, किसी भी रूप से उचित नहीं। यह आवश्यकता से अधिक विलासिता की श्रेणी में आता है।

कई लोगों को तो ए.सी. में भी पंखों को चलाते देखा जा सकता है, जिसका औचित्य समझ से परे रहता है। गरमी से बचने के लिए सरदी का अत्यधिक सेवन किसी भी रूप में हितकर नहीं रहता, यह तन-मन की प्रतिरोधक क्षमता को बुरी तरह से प्रभावित करता है।

औचित्यपूर्ण यह होता कि जितनी गरमी बरदाश्त हो सकती है, उसे प्राकृतिक रूप से सहा जाता और अत्यधिक आवश्यकता पड़ने पर गरमी के ताप का औषधि की भाँति सेवन किया जाता। यह प्रयोग प्रतिरोधक क्षमता को सशक्त करने वाला साबित होता, जो अगले छह माह शरीर व मन को सुदृढ़ एवं नीरोग रखता।

इस तरह सरदी एवं गरमी में तप-तितिक्षा का अभ्यास करते हुए जीवन में दु:खों का हरण करने वाले समत्व योग का अभ्यास किया जा सकता है। इसी तरह लाभ-हानि जीवन के अनिवार्य पहलू हैं। लाभ या उत्कर्ष में अत्यधिक बौराने की आवश्यकता नहीं; क्योंकि इनका अस्तित्व स्वल्प ही रहता है। कहने का भाव है कि इस स्थिति का पूरा आनंद लें, लेकिन इनके नश्वर स्वरूप के प्रति सजग रहें।

इस अवस्था में हम जितना स्थिर व सम रहेंगे, हानि में भी हमारी मनोदशा उतनी ही संतुलित व सम रहेगी। जो लाभ या उपलब्धि में जितना बौराता है, वह हानि या असफलता में फिर उतने ही गहरे हताशा-निराशा के सागर में डूबने के लिए विवश होता है। जीवन में स्थायी सुख-शांति के लिए आवश्यक है कि लाभ-हानि को आता-जाता अनुभव मानते हुए इनके मध्य समता का अभ्यास किया जाए।

हानि से आवश्यक सबक लिया जाए और लाभ में अपने पुरुषार्थ के साथ ईश्वर एवं सहयोगियों का धन्यवाद करते हुए अपने जीवन लक्ष्य की ओर बढ़ा जाए। मान-अपमान के पल भी यदा-कदा आते रहते हैं, जो समत्व योग के अभ्यास के पल हो सकते हैं। निश्चित रूप से मानसिक शांति एवं आंतरिक परिष्कार में इनका अभ्यास बहुत ही लाभदायक रहता है।

अपमान का प्रहार सीधे हमारे अहंकार पर होता है, जिसमें व्यक्ति का तिलमिला जाना स्वाभाविक रहता है और आध्यात्मिक उत्कर्ष की दृष्टि से ये सबसे महत्त्वपूर्ण पल होते हैं। यदि हम इन पलों में प्रतिक्रिया के चक्रव्यूह में उलझ जाते हैं, तो अपनी शांति-संतुलन सब खो बैठते हैं; जबकि यदि हम धैर्य एवं साहस के साथ इन विकट पलों का सामना करते हैं, तो ये ही हमारे आंतरिक उत्कर्ष का साधन बन जाते हैं और धीरे-धीरे हम मान-अपमान से ऊपर उठने की स्थिति की ओर बढ़ते हैं।

इसी तरह सुख-दु:ख जीवन के अभिन्न घटक हैं, जिनका आएदिन हमें सामना करना पड़ता है। अनुकूल परिस्थितियों में व्यक्ति प्राय: जीवन के यथार्थ को विस्मृत कर बैठता है, ईश्वर को भूल बैठता है और दु:खों में भी अपने वास्तविक स्वरूप के साथ ईश्वरीय विधान के प्रति उदासीन हो जाता है, जबकि दु:ख को तप व सुख को योग बनाते हुए व्यक्ति जीवन के इस शाश्वत द्वंद्व से उबरने का अचूक उपाय खोज सकता है।

अस्तित्व का सबसे बड़ा द्वंद्व जीवन-मरण का महायथार्थ है, जिसका देर-सवेर सबको सामना करना पड़ता है। यह भी ईश्वरीय माया का अद्भुत प्रभाव है। जो व्यक्ति चारों ओर नित्य मृत्यु के तांडव नृत्य को देखते हुए भी अपनी मृत्यु के प्रति प्रायः आश्वस्त रहता है—उसे प्रतीत होता है कि जैसे उसकी मृत्यु कभी होने वाली नहीं।

तभी तो वह वर्तमान से अधिक भविष्य की नित नई कल्पनाओं, स्वप्नों व संकल्प-सृष्टि में जीते हुए व्यस्त देखा जा सकता है, लेकिन मृत्यु का महासत्य किसी भी पल दस्तक दे सकता है। ऐसे में तत्क्षण पूर्ण विराम की स्थिति व्यक्ति की नियति बन जाती है।

जीवन के हर पल में उपरोक्त बताए समता के अभ्यास के फलस्वरूप वह मनःस्थिति प्राप्त होती है, जो इस पल को एक योगी-यति की मनःस्थिति के साथ सामना करने की क्षमता दे सके।

परमपूज्य गुरुदेव की आत्मबोध-तत्त्वबोध साधना इसका एक सशक्त व्यावहारिक उपचार है, जिसका अभ्यास करते हुए व्यक्ति नित्य जीवन-मरण के कटु यथार्थ एवं महाद्वंद्व का सामना करने की तैयारी कर सकता है। ❑

राजा संग्राम सिंह एक बार वन की सैर को निकले। उन्हें शिकार अत्यंत प्रिय था। साँझ के समय वे सूर्यास्त का दृश्य देख रहे थे कि उन्हें लगा, टीले पर कोई जानवर बैठा है तो उन्होंने तुरंत निशाना साधकर उस पर तीर छोड़ा। तीर लगते ही एक जोर की चीख सुनाई पड़ी। चीख सुन राजा संग्राम सिंह काँप उठे; क्योंकि यह एक मनुष्य की चीख थी। उन्होंने पास जाकर देखा कि एक बालक तीर से घायल होकर पीड़ा से छटपटा रहा है। कुछ ही समय में उसका मजदूर पिता भी वहाँ आ गया। अपने पुत्र का यह दृश्य देखकर वह बेहाल हो गया।

राजा संग्राम सिंह ने बालक का शीघ्र उपचार कराया और उसके बाद दो थाल बालक के पिता के लिए मँगवाए। एक में स्वर्णमुद्राएँ और दूसरे में तलवार रखी थी। राजा संग्राम सिंह मजदूर से बोले—"मैंने जानवर समझकर तीर छोड़ा था, परंतु वह गलती से तुम्हारे पुत्र को लगा, किंतु तब भी तीर चलाने के कारण दोष मेरा है, तुम चाहो तो स्वर्णमुद्राएँ लेकर इस भूल को माफ कर दो अन्यथा यदि मुझे माफी का हकदार न पाओ तो मेरा सिर तलवार से कलम कर दो।" राजा संग्राम सिंह की न्यायप्रियता देखकर मजदूर दंग रह गया। उसने कहा—"हजूर! मुझे दोनों में कुछ भी नहीं चाहिए। केवल आप यह भूल दोबारा न करें। आप निरीह प्राणियों का वध करना छोड़ दें।" राजा संग्राम सिंह ने उसी दिन के बाद से शिकार करना छोड़ दिया।

भावनात्मक पीड़ा का समाधान

सबसे पहले तो यह समझा जाए कि कोई भी मनुष्य अपने आप में बुरा नहीं होता; बुरी तो आदतें, मान्यताएँ एवं क्रियाकलाप होते हैं। जिसकी आत्मा जाग्रत है, वह कभी इन बातों पर ध्यान नहीं देगा कि किसने हमें कितना महत्त्व दिया? कौन हमारे जीवन को समझने में समर्थ हो सका? किसने हमारी पीड़ा को अनुभव किया?

यह सब बातें उन्हीं लोगों से करने की हैं, जिनके पास जीवन मूल्य और आत्मिक गुण विद्यमान हैं। शेष तो मात्र उस पीड़ा पर हँस सकते हैं। इस सत्य की अनुभूति एक आध्यात्मिक पथिक को सदा रहती है।

इसे पराएपन का भाव कहें या कुछ और, परंतु मानवीय पीड़ा को समझने वाले अंत:करण इस दुनिया में कम ही हैं। उसे तो उन्हीं लोगों ने समझा है, जो कि आत्मा से सशक्त हुए, चाल-चलन से एकांगी एवं जीवन के महत्त्वपूर्ण अनुभवों से समृद्ध हुए।

जिनके भीतर दूसरों को उठाने का भाव विद्यमान हो, जो आत्मा की असीम सत्ता एवं उसके वर्चस्व पर विश्वास करते हों—ऐसे लोग इस दुनिया में कम हैं, इसीलिए चारों ओर अँधेरा दिखाई पड़ता है। मनुष्य को कमजोर करने वाली शक्तियाँ बहुत हैं, पर उत्थान के पथ पर अग्रसर करने वाली बहुत ही कम।

इसी कारण हमारे समाज में भावनात्मक समरसता की कमी है, लोग एकदूसरे से स्वार्थ का संबंध रखते हैं, प्रेम की परिभाषा उन्हें ज्ञात नहीं। जिस हृदय में परमात्मा के दिव्य अनुग्रह का भाव नहीं, जो सबमें समान रूप से विद्यमान अपने ही स्वरूप को देख नहीं सकता, जिसे कल्पनाओं ने जकड़ा हुआ है, जो अपने स्वार्थ और संकुचन को त्याग नहीं सकता—वह कभी महानता का स्वरूप ग्रहण नहीं करेगा, ऐसा निश्चित है।

दु:ख इस बात का है कि हममें से अधिकांश लोग एक अधूरा जीवन जीते हैं, जिसमें कि वे दूसरों से वास्तविक प्रेम एवं आत्मीयता को स्थापित नहीं कर पाते।

हम सतही रूप से तो अपने भावों की अभिव्यक्ति करते हैं, पर दूसरों को सही मार्ग दिखा सकने की सामर्थ्य एवं अभिरुचि हममें नहीं। इसी कारण हमारे बीच दूरी है, हम एकदूसरे से सही संबंध स्थापित नहीं कर पाते।

हमारी विषमता का अंत तभी होगा, जब हम पूर्ण रूप से ईश्वर को अपने अंत:करण में स्थापित कर उसी की क्रियाविधि से चलेंगे। इसे ही दैवी क्रियाकलाप या अंतरंग की पुकार कहेंगे। हम तब तक ऐसा नहीं कर पाएँगे, जब तक कि हम आध्यात्मिक भाव से पुष्ट न हों।

ईश्वर के पथ पर चलने वाले सदैव आत्मनिग्रही एवं परिपूर्ण अवस्था को प्राप्त होते हैं। उनकी भावनाएँ कमजोर नहीं पड़तीं, वे अपने आप को कभी भी असंतुलित नहीं पाते एवं उनका अंत:करण कभी भी विषमताग्रस्त नहीं हो पाता।

आप अपने सभी कार्यों का अधिष्ठाता ईश्वर को मानें, उसके बाद देखिए कि क्या किसी प्रकार

की भावनात्मक कमजोरी शेष रह गई है। ईश्वर वह शक्तिशाली केंद्र है, जहाँ से इस संसार की सभी गतिविधियाँ संचालित होती हैं। उस ईश्वर को पहचानकर कोई भी अज्ञानताग्रस्त नहीं रह सकता है। ईश्वर वह महान सत्ता है, जो कि हमें कभी भी इस संसार की गतिविधियों के मध्य दुर्दशाग्रस्त नहीं होने देता है।

उसके संकल्प से यदि हम चलें तो कभी भी स्वयं को बाह्य घटनाक्रम से प्रभावित नहीं देखेंगे। यही तो दैवी अनुग्रह है। जो यह जान पाता है, वह धन्य हो जाता है। जिसने उसे पहचाना नहीं, वह अभी तक अपने शोक एवं भ्रम-आसक्ति के कुचक्र से मुक्त नहीं हो पाया है।

ईश्वर एक विराट सत्ता है—आवश्यकता है कि उसे अपने सभी क्रियाकलापों में देखा जाए, उसी से प्रेरित हो जीवन का कार्यक्रम निर्धारित किया जाए।

यह प्रार्थना की जाए कि हे ईश्वर! तू हमें महान बना, इस जीवन की सभी बाधाओं से पार लगा एवं हमें निश्चित होने का अवसर प्रदान कर। जब तक तू साथ है, तब तक हम कभी डिग नहीं सकते हैं, तेरे अस्तित्व के बिना यह मानव जीवन पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो सकता है। तू ही हमारा संरक्षक है, तू ही एकमात्र आनंद का आधार। तेरे बिना हम कुछ भी नहीं, हे ईश्वर हमें आत्मबल प्रदान कर।

इसी प्रार्थना के साथ हम यह समझें कि ईश्वर हमसे चाहता क्या है? वह यह चाहता है कि हम पूर्णरूपेण उसके पथ का अनुसरण करें, उसे ही अपना मान उसकी ही प्रतिज्ञा को पूर्ण करें। ❑

कलियुग का प्रभाव बढ़ा तो पृथ्वीवासियों ने देवशक्तियों का तिरस्कार करना आरंभ कर दिया। जिन सूर्यदेव को नित्यप्रति अर्घ्य देने का क्रम था, उन्हें आग का गोला कहकर लोग संबोधित करने लगे। क्रुद्ध सूर्यदेव ने न उगने का निर्णय कर लिया। त्रिलोक में हाहाकार मच गया, प्राणी चेतनता खोने लगे।

ऐसे में प्राची ने सूर्यदेव के समक्ष जाकर उनसे उगने की प्रार्थना की। सूर्यदेव क्रोध में थे सो बोले—"मैं अनादिकाल से इन्हें अपने प्रकाश की किरणें देता आ रहा हूँ और आज ये उत्तर में मुझे कृतघ्नता ही प्रसारित करते हैं, मैं इन्हें अपनी एक किरण भी न लेने दूँगा।"

प्राची गंभीर स्वर में बोली—"प्रभु! नादानों का कार्य ही नासमझी करना है, पर हमारा दायित्व तो यही है कि हम संकट में पड़े व्यक्तियों की सहायता करें। जितना बड़ा पद होता है, उतनी ही उससे जुड़ी जिम्मेदारियाँ होती हैं। आप सृष्टि के नियंता हैं आप के मुँह मोड़ लेने से कष्ट वो भी पाएँगे, जो इस दुर्भाव के जिम्मेदार नहीं हैं।

सूर्यदेव का क्रोध यह सुनकर समाप्त हो गया और वे अपने रथ पर आरूढ़ हो गए। तम से आच्छादित धरा प्रखर आलोक से उदीप्त हो उठी।

पर्व विशेष- गुरु गोविंद सिंह जयंती

निश्चय कर अपनी जीत करौं

देह शिवा वर मोहि इहै सुभ करमन ते कबहूं न टरौं न डरौं अरि सों जब जाइ लरौं निश्चय कर अपनी जीत करौं।

गुरु गोविंद सिंह का जन्म ऐसे समय में हुआ जब भारत पर मुगलों का शासन ही नहीं था, बल्कि भारत बुरी तरह आंतरिक कलह में, हिंदू राजाओं के विपरीत सेना से जुड़ जाने, आर्थिक और सामाजिक रूप से शोषण का शिकार था। भारत का जागरण मात्र एक क्रांतिकारी महावीर द्वारा ही संभव था।

गुरु गोविंद सिंह अपने पिता के बलिदान एवं उनसे मिली विद्या से यह भली भाँति जान चुके थे कि इस समय भारत में एक नई सामूहिक शक्ति की आवश्यकता है। बचपन में इसी प्रसंग में उन्होंने अपने पिताजी से पूछा था कि यह अँधेरे का काल कब समाप्त होगा, कब हमें वापस से अपने अधिकार मिलेंगे और इस अत्याचारी शासन से मुक्ति मिल पाएगी।

उस समय गुरु तेग बहादुर सिखों के गुरु ही नहीं वे उनकी सामूहिक शक्ति के प्रतिनिधि भी बन गए थे। उन्हें अपने मार्ग का अवरोध समझ जब आक्रांताओं द्वारा उन्हें फाँसी के फंदे पर चढ़ा दिया गया, तब उन्हीं की कही गई यह बात चरितार्थ हो गई कि इस समय एक महान व्यक्ति के बलिदान की आवश्यकता है।

गुरु गोविंद सिंह जी तो बचपन में ही कह उठे थे कि आप ही वह महान व्यक्ति क्यों नहीं बन जाते, आपके त्याग से जनमानस जगेगा, क्रांति की एक नई मशाल जलेगी। भारत पर छाए अन्याय-अवरोध के बादलों को हटाने के लिए गुरु गोविंद सिंह ने यह शर्त स्वयं स्वीकारी और मुगलों की आँखों का काँटा बन गए।

उसके बाद उस महान पुत्र की बारी आई। जिसे अपने पिता की विरासत को चरितार्थ रूप प्रदान करना था। जिसे यह बोध था कि अब यह जीवन उत्तराधिकार में मिले त्याग और बलिदान के संदेश का पर्याय बनने जा रहा है। दिल्ली के चाँदनी चौक पर किसी प्रकार उस बालक के कहे अनुसार दो वीर सिपाही गुरुजी का मृत शरीर, घने अँधेरे में, अपनी पहचान बदलकर ले आए। उनके पराक्रम के कारण ही विधि-विधान के साथ उनका अंतिम संस्कार संपन्न हो सका।

इस तरह से गुरु गोविंद सिंह के नेतृत्व में एक भावी महान अभियान की भूमिका निर्धारित हो गई। जिसे वे खालसा के नाम से पुकारते थे— उसमें धर्म एवं कल्याण की भावना से प्रत्येक सिख परिवार से एक व्यक्ति शामिल होता था, वह सेना संख्या में छोटी होते हुए भी गुरु गोविंद के हिमालय से संकल्प के कारण इतनी मजबूत हो गई कि आने वाले वर्षों में इन्हीं आम लोगों के सहारे उन्होंने भीषण युद्ध लड़े एवं उनमें जीत भी प्राप्त की।

खालसा मत जो आज भी है, उस समय की परिस्थितियों में जन्मा एक ऐसा सशस्त्र अभियान था, जिसने भारत की पूर्वी सीमा को विदेशी आक्रमणों एवं आक्रांताओं की ढीठ के सामने न झुकने एवं आपसी संगठन द्वारा एक दीवार खड़ी करने को प्रेरित किया। यह उस समय हो रहा था, जब किसी प्रकार बचने एवं भाग निकलने के लिए

लोग आकुल हो रहे थे, गुरु गोविंद सिंह जी ने पाँच ककार को खालसा का प्रतिबिंब बताया, वे थे— केश, कड़ा, कृपाण, कंघा और कच्छा।

अब जब उनकी सेना संगठित हो चुकी थी, आवश्यकता थी कि वे उन्हें उनके वास्तविक गंतव्य एवं प्रेरणास्रोत के रूप में वे सिद्धांत बताएँ, जिनसे उनके भावी कार्यक्रम को रूप दिया जा सके।

उन्होंने कहा—"जो इस पीड़ादायक स्थिति में, अंधकार के घने कोहरे के मध्य सच्ची वीरता का परिचय देगा, वही माँ दुर्गा के सच्चे उपासक के रूप में देखा जाएगा। माँ बलिदान चाहती हैं और उन्हें इस समय उन लोगों की आवश्यकता है, जो सर कटा सकते हैं, लेकिन केश नहीं मुँडवाएँगे, उन्हें महान त्याग के लिए तत्पर रहना होगा।" इसी समय उन्हें वे पाँच वीर मिले, जिन्हें पाँच प्यारे के नाम से उपाधि दी गई।

उन्होंने कहा—"हम तैयार हैं।" और गुरु गोविंद जी ने उन्हें अपनी कुटिया में ले जाकर कुछ इस प्रकार का अभिनय किया कि इन्होंने अपने प्राण त्याग दिए; जबकि वास्तव में कुछ भेड़ों की लाश से बहता खून उस सभा के सदस्यों को दिखाई पड़ा, जिनका वे स्वाभिमान जगाना चाहते थे।

गुरु गोविंद सिंह ने एक-एक कर पाँच ऐसे लोगों को अपनी कुटिया में भेजकर, यह प्रक्रिया दोहराई एवं तब सिख समाज वास्तव में जाग उठा। क्रांति की ऐसी लहरें उठीं कि देखते-ही-देखते गाँव-गाँव से, प्रत्येक कस्बे-प्रांत से लोग उनसे जुड़ते चले गए।

लोगों में भय खतम हो गया, चारों ओर से चंदे के रूप में अस्त्र-शस्त्र और युद्ध के लिए आवश्यक सामग्री का संग्रहण होने लगा। गुरु गोविंद जी ने सिखों को ऐसी पराक्रमी और जुझारू जाति के रूप में परिवर्तित कर दिया कि दिल्ली के शासन पर बैठे शहंशाह को अपनी गद्दी हिलती दिखाई पड़ी। औरंगजेब आगबबूला हो गया और उसने कितने ही षड्यंत्र रचाए, फिर जब उसकी सेना अनेक अवसरों पर गुरु गोविंद सिंह से भिड़ी तो देखा यही गया कि सिखों की छोटी-सी टुकड़ी अपने से दस गुना बड़ी सेना पर भारी पड़ी।

एक के बाद एक युद्ध वे जीतते गए। युद्धकला में जो महारथ खालसा ने गुरु गोविंद सिंह जी के दिशा-निर्देश पर पाई थी, वह अभूतपूर्व थी। तब वह सेना ही नहीं, एक महान धर्मवाहिनी के रूप में परिवर्तित हो चुकी थी। खालसा ने मुगलों के छक्के छुड़ा दिए और एक के बाद एक युद्ध और उनके परिणाम वही होते गए, जो गुरु गोविंद सिंह जी चाहते थे।

उन्होंने कितने ही योद्धाओं को तैयार किया, अपने पुत्रों को वीर वसुधा की खातिर बलिदान किया एवं जनता में स्वाभिमान की प्रबल लहर दौड़ा दी। तब एक भी सिख ऐसा नहीं था, जो गुरु गोविंद के शौर्य और पराक्रम से अभिभूत न था। आज के समय में मातृभूमि के प्रति इतनी उत्कट भावना एवं ऐसा जबरदस्त तेज एवं पराक्रम विरलों में ही पाया जाता है।

गुरु गोविंद सिंह जी कोई पेशेवर लड़ाके नहीं थे, वे एक संत थे, जिन्होंने जीवनभर समाज की कुरीतियों एवं अंध-परंपराओं के प्रति संघर्ष छेड़ा था। उन्होंने दु:खी जन को हृदय में उस ईश्वर की दिव्य भावना को न सिर्फ स्वीकार करने, बल्कि उससे अपने आचरण को सबल बनाकर, पुरुषार्थ एवं धर्म के मार्ग पर आगे बढ़ने का आवाहन किया।

वे चाहते तो अन्य देशवासियों की तरह पीछे मुड़ सकते थे, अपने परिवार और इलाके तक ही सीमाबद्ध हो मोर्चा सँभाल सकते थे, जैसा कि अनेकों राजाओं ने किया, पर वे गुरु थे, समाज की

पददलित स्थिति और उस पर आक्रमणकारियों का क्रूर शासन उन्हें बिलकुल भी बरदाश्त न था। यह गुरु गोविंद जी की तलवार ही नहीं, उनके धर्मपरायण जीवन का असर था कि देखते-ही-देखते जनता में अपने नायक के प्रति अपूर्व प्रेम एवं श्रद्धा का भाव उमड़ पड़ा।

जिन्होंने भी त्याग, तितिक्षा एवं तप के बल पर जीवन को महान एवं ओजस्वी बनाया है, उन्हें जनसमर्थन तो मिलता ही है, साथ ही वे उत्कृष्ट भावनाओं द्वारा अपने समाज और जाति के प्रति अपने दायित्वों को भी निभाते हैं। गुरु गोविंद सिंह जी का उदाहरण उसी महान त्याग एवं पुरुषार्थ की भावना से लिया जाता है, जिसने उन्हें भारत की भूमि पर विराजित अनेकों सत्पुरुषों एवं पुण्यात्माओं में एक विशिष्ट स्थान पर स्थापित किया।

उनके जैसी थाती देश-विदेश में कम ही सुनने को मिलती है। कहने को तो उस समय देश में अनेकों ऐसे वीर-बलिदानी और त्यागी-पुरुष थे, परंतु उनका उदाहरण इतिहास के पृष्ठों में अमर विभूति के रूप में लिया जाता है, जिन्होंने धर्म से प्रेरित हो एक महान लड़ाई लड़ी और अपनी ही परिधि तक सीमित न रहे।

गुरु गोविंद सिंह जब देशव्यापी अभियान पर निकल पड़े थे, तब उन्होंने कितनों को ही अपने उदाहरण से प्रेरित किया, लोगों को जगाया कि आप सुरक्षित नहीं हो, मुगलों की सेना कभी भी यहाँ पर आक्रमण कर सकती है, हमें सतर्क एवं सचेष्ट रहना चाहिए। भले ही अंत में वह अपने ही सेवक द्वारा, जिसे उन्होंने एक मुगल सरदार के बेटे के रूप में अपने यहाँ रखा था, हताहत हुए।

उनके जख्म कई दिनों तक जब ठीक न हो पाए तो उन्हें इस जगत् से अंतिम विदाई लेनी पड़ी। उन्होंने यही कहा कि अब से कोई भी शत्रु-पक्ष से आए व्यक्ति को न स्वीकारे तथा सावधान होकर देश-जाति की सुरक्षा में अपना हाथ बँटाए। गुरु गोविंद सिंह का जीवन आगे आने वाले सिख समुदाय के पुरोधाओं के लिए ही नहीं, वरन देश-विदेश में अनेकों के लिए उदाहरण बना।

इसी त्याग एवं संघर्ष का परिणाम है कि आज भी भारत की सेना उस खालसा पंथ से अधिकाधिक रूप से उन नौजवानों को लेती है, जो एक अकेले ही सौ पर भारी पड़ते हैं। गुरु गोविंद सिंह जी का जीवन चरित्र पिता की असमय मृत्यु, भाइयों के बिछड़ जाने, पुत्रों के महान बलिदान और स्वयं लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त होने का रहा है।

सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते। —*ऋग्वेद 1/41/4*

अर्थात हे आदित्यो! यज्ञ में आपके आने का मार्ग सुगम और सत्ययुक्त है या दूसरे शब्दों में सत्य मार्ग पर चलने वालों का जीवन सरल हो जाता है।

धन्य है वह माँ भारती, जिसने ऐसे वीरों को जन्म दिया, अपनी कोख में पालकर, धरती को अन्याय एवं शोषण से मुक्त कराया। यदि हम एक पल के लिए भी सोचें कि क्या बीती होगी उस गुरु पर, जिसने धर्म के पतन और अन्याय के उदय को इतने करीब से देखा, जिसे अपने पुत्रों को दीवार में चिनवाने का संदेश प्राप्त हुआ, जो अकेला इस भीषण रक्त-पात के मध्य अविचल दृढ़ साहस एवं भक्तिपूर्वक आगे बढ़ा और अपने समाज और राष्ट्र को गौरवान्वित करने में सफल रहा। ऐसे वीर महापुरुष को शत-शत नमन। ❑

कैसे करें स्वयं का सृजन

ईश्वर ने मनुष्य को सृजनात्मकता के रूप में एक ऐसी विशेषता दी है, जिसके बल पर वह कुछ भी कर सकता है। किसी भी आवश्यकता की पूर्ति कर सकता है, किसी भी चुनौती का सामना कर सकता है और किसी भी समस्या का समाधान कर सकता है।

सृजनात्मकता एक ऐसी क्षमता है, जिसके आधार पर व्यक्ति शून्य से भी कुछ सृजन कर सकता है एवं अपनी परिकल्पना को साकार कर सकता है।

मानव सभ्यता एवं संस्कृति के विकास की कहानी वस्तुतः सृजनात्मक क्षमता के विकास-विस्तार की कहानी रही है। कभी प्राकृतिक भोजन एवं कच्चा मांस खाने वाले आदिमानव ने इसी के आधार पर अग्नि का आविष्कार किया और खाना पकाना सीखा। फिर पहिए की खोज के साथ वाहन का उपयोग करना सीखा। फिर भाप इंजन के साथ रेलगाड़ी और पहली औद्योगिक क्रांति की शुरुआत की।

विज्ञान के बढ़ते चरण में विद्युत की खोज, रेडियो तरंगों के आविष्कार के साथ विकास के नए आयाम खुले। बीसवीं सदी के मध्य कंप्यूटर के साथ एक नए युग में प्रवेश हुआ और फिर इंटरनेट और मोबाइल के साथ संचार क्रांति के नए युग में प्रवेश मिला और आज कृत्रिम बुद्धिमत्ता के साथ मानव, विकास के नित नए शिखरों को छू रहा है।

विज्ञान और तकनीकी के साथ मानविकी एवं समाज विज्ञान के क्षेत्र में सृजनात्मकता के आधार पर मनुष्य ने साहित्य, कला, संगीत, दर्शन, धर्म, अध्यात्म, समाज विज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, वास्तुशिल्प जैसी विधाओं को विकसित किया और मानव जीवन को समृद्ध किया।

दैनिक जीवन में सृजनात्मकता कविता, कहानी, गीत, संगीत, नृत्य, पटकथा, सिनेमा व नाना प्रकार की कलात्मक अभिव्यक्तियों के रूप में प्रकट होती है—जो मनुष्य को धरती के अन्य प्राणियों से अलग करती है।

इस तरह सृजनात्मक क्षमता के साथ मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति आगे बढ़ी है और बढ़ रही है, लेकिन इन सबका आधार व्यक्ति का स्वयं का सृजन ही है, जिसे सबसे बड़ी कला कहा जा सकता है; क्योंकि सभ्यता और संस्कृति का विकास इसी आधार पर टिकाऊ बनता है अन्यथा व्यक्ति के अनगढ़, अपरिष्कृत एवं अधूरे रहने पर सभ्यता एवं संस्कृति की विकास यात्रा भी अवरुद्ध हो जाती है।

आश्चर्य नहीं कि विश्व में कितनी सभ्यता-संस्कृतियों का नामोनिशान इसी कारण कालक्रम में मिटता गया, जबकि भारतीय संस्कृति काल के तमाम थपेड़ों को खाते हुए भी जीवंत एवं प्रवाहमान बनी रही और आज पुनः अपने सनातन गौरव के साथ जाग्रत-जीवंत होकर अपनी भूमिका निभाने के लिए तैयार हो रही है। इस भूमिका में प्रतिष्ठित होने के लिए जागरूक व्यक्ति को पुनः स्वयं के सृजन में जुटना होगा।

स्वयं के सृजन का पहला चरण है, स्वयं को जानना तथा अपने मौलिक जीवन लक्ष्य को

पहचानना। इसके अंतर्गत कैरियर गोल के आधार पर व्यक्ति आर्थिक सुरक्षा-समृद्धि को सुनिश्चित करता है, जिससे परिवार का भरण-पोषण संभव हो सके।

जीवन लक्ष्य के आधार पर एक अर्थपूर्ण जीवन जीकर परिवार से आगे समाज, राष्ट्र एवं मानवता के कुछ काम आ सके। इसके लिए अपनी विशेषताओं, क्षमताओं व गुणों से परिचय आवश्यक हो जाता है और इसके साथ ही स्वयं के दोष-दुर्गुणों व कमियों का भी परिचय अभीष्ट है, जिससे इन्हें दूर किया जा सके और अपनी मनवांछित संकल्प सृष्टि को रूपाकार दिया जा सके। अब अपने लक्ष्य को नियमित आधार पर छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ते हुए प्राथमिकता के आधार पर अंजाम दिया जाता है।

इसके लिए समय का श्रेष्ठतम सुनियोजन करते हुए आगे बढ़ना होता है। इस तरह नित्यप्रति अपने भव्यतम प्रारूप में स्वयं को तराशते हुए व्यक्ति अपने क्षेत्र का सफल इनसान बनता है और लौकिक क्षेत्र में अपनी सृजनात्मक उपलब्धियों के साथ एक संतुष्टि एवं सार्थकता भरा जीवन जीता है।

उपरोक्त चरणों के साथ अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति, अपनी आधारभूत समस्याओं के निदान व लौकिक विभूतियों के अर्जन के साथ एक सफल जीवन की दिशा में अग्रसर होता है, लेकिन यह सृजन का पहला चरण है।

सृजन का दूसरा चरण आत्म विस्तार का है। अपने अनुभव व ज्ञान के विस्तार का है। अपनी अर्जित क्षमताओं के आधार पर समाज-संसार में समाधान का हिस्सा बनकर जीने का है। जरूरतमंदों की सहायता करते हुए, सत्पात्रों को उचित प्रेरणा-मार्गदर्शन देते हुए सेवा का भाव है, जो अंततः उसे मानव से महामानव की श्रेणी में लाकर खड़ा कर देता है।

निष्काम सेवा के इस पथ पर बढ़ता हुआ व्यक्ति चित्तशुद्धि के साथ आध्यात्मिक सोपानों को पार करता है और आध्यात्मिक परिपूर्णता की ओर बढ़ता है, जो अंततः मुक्ति, मोक्ष, आत्मबोध, समाधि जैसी अवस्था में पहुँचाकर, उसे देवमानव की श्रेणी में लाकर खड़ा कर देता है।

यहीं पर जीवन में समग्र सफलता का उद्देश्य पूर्ण होता है। सृजनात्मकता के इस शिखर पर पहुँचकर ही व्यक्ति प्रकाशस्तंभ की भाँति जीवन, विद्या के आचार्य के रूप में अपने आचरण के साथ संस्कृति एवं संस्कारों का संप्रेषण करता है।

स्वयं का यह सृजन वांछित कार्य होते हुए भी सरल, किंतु कठिन कार्य है। सरल इस माने में कि इसके लिए बाहर के संसाधनों की अधिक आवश्यकता नहीं रहती, सब कुछ अंतर्निहित रहता है, जिसे प्रकट करना है। कठिन इसलिए कि इस निमित्त व्यक्ति को स्वयं को ही सृजन की प्रयोगशाला बनाना पड़ता है।

स्वस्थ युवा-सशक्त राष्ट्र।
शालीन युवा-श्रेष्ठ राष्ट्र।
स्वावलंबी युवा-संपन्न राष्ट्र।
सेवाभावी युवा-सुखी राष्ट्र।

जन्म-जन्मांतरों के अभ्यासों का सामना करते हुए, नए रूप में स्वयं को ढालना होता है। रूपांतरण की यह प्रक्रिया रोमांचक प्रतीत होते हुए भी समयसाध्य है और कष्टसाध्य भी, लेकिन असंभव नहीं। सजग, संतुलित एवं नैष्ठिक प्रयास के आधार पर यह साकार होती है, विशेषकर परिवर्तन के इन महान क्षणों में, जब स्वयं महाकाल युग-परिवर्तन की प्रक्रिया के लिए उद्यत हों और जब गुरुकृपा भी साथ में हो तो फिर कुछ भी असंभव नहीं रह जाता। ❑

नारी जागरण

इस दुनिया की आधी जनसंख्या नारियों की है—यह बात अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण सत्य को लिए हुए है। वह यह कि यदि हमें वास्तव में प्रगति की दिशा में बढ़ना है तो हम यह समझें कि नारी वर्ग को कैसे आगे लाया जाए, उनकी समस्याओं का निदान कर कैसे उन्हें एक सुखी एवं समोन्नत मानवता का अंग बनाया जाए।

हम अपने इस आवश्यक कर्त्तव्य से दूर रह गए। हमें पता ही नहीं चला कि हमारा जीवन किन अंधकार की बेड़ियों में जकड़ा रह गया। पुरुष यदि स्त्री को अपने समतुल्य देखेगा तो उसका विकास अधिक शीघ्र गति से हो सकेगा।

हमारे समाज में समस्या यह है कि पुरुष ने अधिक वर्चस्व प्राप्त कर लिया है तथा नारियाँ अपने आप को पीछे की पंक्ति में खड़ा हुआ पाती हैं। एक प्रगतिशील समाज में दोनों की समान भूमिका होनी चाहिए परंतु हम किस दिशा की ओर बढ़ रहे हैं। हमने किन मानदंडों को स्थापित कर दिया, हम स्वयं को जागरूक क्यों न कर पाए।

जिस समाज में स्त्रियाँ शोषित दिखाई पड़ेंगी, जहाँ का वातावरण उन्हें पूर्णरूप से विकसित होने का अवसर न दे तथा जिसके ऊपर पुरुष वर्ग शासन करता हो, उसकी प्रगति कभी नहीं हो सकती है।

हमें यह समझना होगा कि समाज की केंद्रीय धुरी के रूप में स्त्री वर्ग ही अपनी भूमिका निभाता है। उसे संतानोत्पादन और परिवार के रख-रखाव से संबंधी दायित्व तो निभाने ही हैं, परंतु समाज के विकास का वह व्यापक कार्य बिना नारी जागरण के संभव नहीं।

प्रकृति ने उन्हें स्नेह और ममत्व का गुण स्वाभाविक रूप से दिया है तथा वे हर समस्या का समाधान खोजने में भी अग्रणी रहती हैं। यहाँ पर हमें समझना होगा कि हम सब के मूल में जिस शक्ति का निवास है, वह जननी ही है; क्योंकि उसी के रक्त से अभिसिंचित यह काया है, उसी के लाड़-दुलार से यह जीवन पनपा है तथा उसकी भूमिका मनुष्य के निर्माण में अत्यधिक है। ❑

यज्ञ की वेदी पर रखा नारियल कपूर पर क्रोधित होते हुए बोला—"तुच्छ जीव! मेरा शरीर बड़ा है तू रोज मेरे समीप बैठकर मेरा स्थान खींचने का प्रयास करता है। अभी तुझ पर गिर जाऊँ तो तेरा कचूमर ही निकल जाए।"

कपूर मुस्कराते हुए बोला—"यह तो और अच्छी बात है, नारियल भाई! ऐसे में तो मेरी सुगंधि और सभी दिशाओं में पहुँच जाएगी।"

क्रोध को शांति से ही जीता जा सकता है।

मन के मालिक बनें

जब तक व्यक्ति का मन बाह्य विषयों से पूर्णतः विरक्त नहीं होता, उसे अंतस्थ दृष्टिकोण की प्राप्ति एवं सभी समस्याओं का समाधान प्राप्त नहीं होता, तब तक कोई भी प्रगति या उत्थान का क्रम नहीं सध सकता है। मन को अपना वशवर्ती बना लेना ही सच्ची साधना है एवं इसके लिए हमें सतत संघर्ष करना पड़ता है।

मन एक ऐसा उपकरण है, जो या तो हमें अत्यंत पीड़ा दे सकता है या हर प्रकार की पीड़ा से मुक्ति प्रदान कर सकता है। मन का सदुपयोग उन्हीं ने जाना है, जो अपने अंतःकरण में झाँककर यह देख सकें कि ऐसे कौन-से विचार हैं, जो व्यक्ति की प्रगति में बाधक बन उसे असहाय बना देते हैं।

मन के बिना कोई कार्य सधता नहीं। यदि मन ही न हो तो मनुष्य अपने जीवन को किसी प्रकार सुखी-समुन्नत नहीं बना सकता है। मन की क्रियाप्रणाली को पहचान जाना ही वास्तविक धर्म है एवं इसके बाद मनुष्य को अपने विकास की दिशा में बढ़ने में कोई कठिनाई नहीं रह जाती है।

जब तक हमारा मन परिष्कृत नहीं है, उसमें जीवन को उज्ज्वल दिशाक्रम प्रदान करने की सामर्थ्य नहीं, तब तक हम केवल उसका उपयोग सामान्य प्रयोजनों के लिए कर सकते हैं, किसी असाधारण पुरुषार्थ के लिए नहीं। जब हमारा मन पूर्ण रूप से परिष्कृत हो जाता है, उसमें किसी प्रकार के दोष-दुर्गुण का वास नहीं होता तथा वह हमें उपयुक्त दिशाक्रम प्रदान करता है, तभी यह होता है कि जीवन सुमंगल की दिशा में बढ़े, उसमें कोई भी अवांछित तत्त्व रहने न पाए तथा उसकी यात्रा महानता की अनुगामी बने।

इसके लिए चित्त का स्वच्छ होना अनिवार्य है, आप कोई भी सार्थक प्रयत्न तभी कर पाते हैं, जब मन में इतनी शक्ति हो कि वह निर्धारित उद्देश्य की पूर्ति कर सके। मन को बलवान बना लेना ही हमारा धर्म है एवं इसके लिए सतत उत्थान की प्रक्रिया को अपनाना पड़ता है।

मन एक ऐसा विषय-बीज है, जो यदि नियंत्रित कर लिया जाए तो असाधारण मेधा का धनी हो सकता है। यदि उसे अव्यवस्थित निरुद्देश्य विचरण करने दिया जाए तो यह अपनी चेतना के साथ घोर अन्याय ही कहा जाएगा। जिन्होंने भी मन पर नियंत्रण प्राप्त किया है, वे यही समझ पाए कि इससे उपयुक्त कोई साथी नहीं और इसके जैसा शत्रु भी कोई नहीं है। हमारा मन जितना विषयों में रमण करता जाता है, उसे उतना ही आत्मा की केंद्रीय धरोहर, ज्ञान से वंचित रहना पड़ता है।

आप ज्ञान के उपासक बनिए। मन को कभी अपने ऊपर बोझ न बनने दें। यह आपका सहयोगी बने, ऐसी ही प्रार्थना हमें ईश्वर से करनी चाहिए। ईश्वर हमारा परम सहचर है, उसके जैसा मार्गदर्शक और सभी कठिनाइयों के मध्य एकनिष्ठ रखने वाली शक्ति इस संसार में दूसरी नहीं। जैसा चाहे वैसा बन जाना ही मनुष्य की वास्तविक सफलता है।

इसके लिए उसे त्याग की वृत्ति को अपनाना पड़ता है। मन को अपने अनुसार चलने दीजिए, उसके प्रवाह में बाधा न बनिए, बस, उसे पूर्ण रूप से स्पष्टता प्रदान करने हेतु अपनी आत्मा के

उच्च-संस्कार का स्मरण रखिए। जो ऐसा कर सका, उसका जीवन धन्य है; क्योंकि मन की शक्ति को यथायोग्य कार्यों में लगाने हेतु हमें उसका नियमन करना आना चाहिए, जो कि तभी संभव है, जब मनुष्य अपनी आत्मप्रेरणा से संयुक्त हो।

उसे किसी प्रकार की चिंता न रहे तथा उसका क्रियाकलाप सदा उच्चतर उमंग का प्रतिनिधि बने। यही मन को साधने की प्रक्रिया है। जिसे अपने मन पर पूर्ण विश्वास है, वो यह जान गया कि मन मेरी मुक्ति का भी कारण बन सकता है और मेरे बंधन का भी।

वो जानता है कि जब तक मैं स्वयं को मन के गतिचक्रों से बाँधे रखूँगा, अपनी आत्मसंपदा को भुला इस संसार को ही महत्त्व देता रहूँगा, तब तक मन मेरा वास्तविक साथी या मेरे क्रिया-प्रयोजनों का आधार नहीं हो सकता है। मन का मालिक हो जाना भी एक विज्ञान है।

इसके लिए सतत संघर्ष की यात्रा पर चलना होगा, जो कि यही है कि हमने मन को एक उपकरण बना उससे जीवन के अनुसंधान में एवं हर प्रकार के व्याधि-विकार से परे उसका समायोजन करने की दिशा में कदम बढ़ा लिया है। ऐसा तभी होगा, जब मनुष्य यह पहचान ले कि वह किसी महान सत्ता का प्रतिनिधि बनकर इस धरती पर आया है, उसे उसी के अनुरूप आचरण करना है तथा उसके क्रियाकलाप सदा अपने आदर्श अनुरूप हों।

जब ऐसा हो जाता है तो मनुष्य किसी पारदर्शी चेतना का धनी तथा विचारों से समुज्ज्वल कहलाता है। उसका जीवन सदा उस उत्कर्ष की भावना से प्रेरित होता है, जो कि किसी भी आत्मपथिक की संगी है। इसके बिना जीवन पूर्ण रूप से शांति को प्राप्त नहीं करता तथा बिना शांति के मुक्ति संभव नहीं है।

हमें यह समझना चाहिए कि जिसके द्वारा जीवन संचालित है, वह आत्मा ही है तथा उस आत्मा का प्रहरी यह मन यदि ईश्वर निर्दिष्ट कार्यों को करने लगे तो महान सौभाग्य का धनी कहलाएगा।

ईश्वर एक सिद्धांत है, अपनी आत्मा को पूर्ण उत्सर्ग प्रदान करने का। यदि यह है तो कोई भी कठिनाई हमें अपने पथ से विचलित करने की सामर्थ्य नहीं रखती है। इसे ही मनुष्य का दिव्य वैभव कहेंगे। अपने मन को आत्मा का अनुवर्ती बनाइए, उसे पूर्ण रूप से विषयों से विलग होने दीजिए। मन जितना आत्मा के संसर्ग में विकसित होता जाएगा, जितना उसे आरोहण का पथ प्रदान किया जाएगा, उतना ही वह अपनी शक्ति पर विश्वास कर सकेगा। ऐसा ही मन जीवन में उन्नति एवं सफलता का आधार बनता है। ❐

जिन्होंने अपनी भौतिक उन्नति की आकांक्षा से मुँह मोड़कर परमार्थ प्रयोजन में अपनी सामर्थ्य को जुटा दिया, अपनी सारी संभावनाओं और महत्त्वाकांक्षाओं को परमार्थ के लिए लुटा दिया, जिनका पुरुषार्थ अपने निज के लिए नहीं, दूसरों के लिए काम आया, इन उदार और भावना के आदर्शों को जीवंत रखने वालों को भौतिक दृष्टि से खाली हाथ रहना पड़ा तो मानवीय कृतज्ञता का कर्त्तव्य है कि उन्हें कम-से-कम कुछ तो देकर अपना ऋण-भार हलका करें। उन्हें और कुछ नहीं तो अपनी सेवा और साधना की स्वीकृति का यह प्रमाण तो मिले कि जनमानस में उत्कृष्टता के लिए कम-से-कम श्रद्धा दे सकने की वृत्ति तो जीवित है। ***—परमपूज्य गुरुदेव***

आत्मसंपदा

इस जीवन की सर्वोच्च संपदा का नाम आत्मसंपदा है। वह जिसके पास है, जो उससे आप्लावित है, जिसे उसका रस प्राप्त हो चुका है, वह व्यक्ति यदि कहे कि मिला तो कुछ नहीं, पर खोजा बहुत था तो इसे उपहास एवं अनादर का विषय ही कहेंगे; क्योंकि जिसने सच्चे अर्थों में अध्यात्म को पाया है, जिसे उस ईश्वर के प्रत्यक्ष अनुभव हुए हों, जो जीवन के मध्य में आत्मा की दिव्य ज्योति को, उसके प्रभुत्वसंपन्न संस्कारों को तथा उसके महान अनुदान को देख सके—वह व्यक्ति चाहे जिन भी परिस्थितियों में हो, उसका जीवन सजला-सँवरा तथा गुण-कर्म-स्वभाव से परिपूर्ण कहलाता है।

वह फिर संसार को अपनी आत्मिक प्रगति के माध्यम के रूप में देखता है। जीवन की महानता का स्वरूप ऐसे ही अंत:करणों में परिलक्षित होता दिखाई पड़ सकता है। अपने स्वाभिमान को जगाना एवं पूर्ण-परिष्कृत मन:स्थिति से जीवन के सौंदर्य का लाभ उठाना, यही वह गुण है जो यदि किसी व्यक्ति के पास हो तो वह परिपूर्ण कहलाता है। ऐसा व्यक्ति जहाँ भी होगा, वहाँ अपनी प्रकाश-किरणों से किसी को भी वंचित न रहने देगा। यही उसका सुदृढ़-संस्कार है तथा इसे बनाने में परिश्रम लगता है। इसके लिए चित्त को परिशोधित करने की क्रिया-प्रणाली सुस्थापित होनी आवश्यक है।

इस जगत् से जो उस पार के जगत् को देख सके, जिसे ऐसा सच्चा अनुभव प्राप्त हो कि हम अकेले नहीं, बल्कि परमात्मा की दिव्य-संपदा, उसका आशीर्वाद हर पल हमारे साथ है तथा इस जीवन में वास्तव में कुछ पाने योग्य है, तो वह है अंत:करण की स्वच्छता तथा कर्मों में निर्लिप्तता के साथ प्रभु-संतोष के लिए कार्य करना—ऐसा व्यक्ति चाहे जहाँ रहे, जिस भी वातावरण में उसे अपने अनुकूल कार्य-भूमि का चुनाव करने को मिले, वह स्वर्गीय आनंद एवं दिव्य-अभीप्सा के तले ही अपना जीवन-व्यापार करता दिखाई पड़ता है। इसे ही अंधकार का, तमस् का तथा अंतरात्मा की अवमानना का उच्छेदन कहेंगे तथा यही आत्मसंपदा है।

हमें इस बात के प्रति सजग होना चाहिए कि जीवन वास्तव में बनता भीतर से ही है, बाहर तो मात्र उसका स्वरूप परिलक्षित होता है, उसकी शांति ही बाहर मुखरित हो अद्भुत परिणाम उपलब्ध कराती है तथा जीवन का वास्तविक विकास-पथ अंत:करण के उच्चारोहण तथा मन की निर्मलता द्वारा ही होता है।

जिसे यह संपदा प्राप्त हो गई, वह व्यक्ति कभी धोखे में नहीं रह सकता है; क्योंकि परमात्मा हर पल उसके साथ हैं, ऐसा विश्वास एवं ऐसी दृढ़-कामना उसे प्रतिपल आनंद एवं आह्लाद का विषय प्रदान करती है। उसकी महान शांति अनेकों रूपों में वितरित-विस्तारित होती है तथा उसका व्यक्तित्व अंत:प्रेरणा के पोषण तथा उसे विस्तृत रूप प्रदान करने की दिशा में ही होता है।

ऐसा व्यक्ति स्वभाव से परिपूर्ण तथा गुणों की खान होता है, तथा उसे अपने आत्मिक केंद्र से कोई भी शुभ कार्य करते देर नहीं लगती। जीवन की इसी विचित्रता को गुण-कर्म-स्वभाव का परिवर्तन

तथा आत्मा के सिद्धांतों के अनुरूप केंद्रीय-क्रियाविधि कहेंगे।

जब हमें पता होता है कि जीवन का विलक्षण स्वरूप आता कहाँ से है तथा किस प्रकार उसे प्रतिक्षण प्राप्त किया जाता है, तब आत्मसंपदा अपने सत्य स्वरूप में उजागर हो पाती है। जिसके पास यह है, वह समस्त संसार की संपदा को प्राप्त कर भी इसे नहीं बेचेगा, वह उसका उपयोग किसी विशेष लक्ष्य के लिए, किसी उच्चतर प्रयोजन के लिए करने में समर्थ होगा तथा उसका जीवन विशालता का एवं भव्यता का प्रतीक-प्रतिनिधि बनकर रहेगा।

ऐसा तभी होता है, जब हमारी अंतरात्मा सक्रिय होती है तथा उसे अपनी गरिमा के अनुरूप आचरण का अवसर प्राप्त होता है। वह महान कहलाती है तथा उसे किसी भी प्रकार का अभाव-विकार सता नहीं पाता। इसे ही आत्मोद्देश्य की प्राप्ति भी कहते हैं तथा जिसे यह प्राप्त हो जाए वह फिर संसार की खाई-खंदक में उसे ढूँढ़ता नहीं फिरता। ऐसी प्रतिभा का जन्म हममें हो सके यह तभी संभव है, जब हमने अपना क्रिया-व्यापार जगत् से हटाकर आत्मा को सौंप दिया हो कि अब आत्मा ही सब कुछ सँभालेगी, हम तो निमित्त मात्र बनकर उसकी क्रिया-विधि को देखा करेंगे तथा अपने जीवन के पुरुषार्थ-पथ को आत्मा के कल्याण में नियोजित किए रहेंगे।

ऐसा तभी हो पाएगा जब एक दिव्य रस हमारी प्रत्येक गतिविधि से प्रवाहित हो, तथा जीवन संपूर्णतः उस दिव्य उत्सर्ग में अपने को समाहित कर दे। ऐसी विद्या को ग्रहण करना अपने आप में सौभाग्य का विषय है तथा यह होता आत्मा के कल्याण के हित-चिंतन द्वारा है। यही जीवन-निर्माण की प्रक्रिया है तथा इसे प्राप्त कर फिर दोबारा कहीं अन्य देखने-समझने की आवश्यकता नहीं पड़ती, यह पथ महान सौभाग्य तथा गौरव का विषय है।

जीवन का विशाल वट-वृक्ष इसी की सेवा-शुश्रूषा में लगा हुआ है तथा जिस भी प्रकार मानव इस दिव्य रूप को अपने में समाहित कर परिपूर्ण होता है, वही एकता का पथ है तथा सत्य की शाश्वत पुकार है। ❑

फूलों से लदे गुलाब के पौधे को चिंतातुर देखकर पास में उगे आम के पौधे ने उससे इसका कारण पूछा। गुलाब ने कहा—"आज तो मैं फूलों से लदा हूँ, पर वह पतझड़ दूर नहीं, जब मुझ पर एक पत्ता भी शेष न होगा। आज जो मेरे सौंदर्य की प्रशंसा करते नहीं थकते, कल वह मेरी ओर देखेंगे भी नहीं। क्या यह कम चिंता की बात है।"

आम का पौधा बोला—"मित्र! कल के पतझड़ की चिंता करने के बजाय तुम उसके बाद पुनः लौटने वाले वसंत के विषय में क्यों नहीं सोचते। मुझे देखो, अभी मुझे वृक्ष बनने में वर्षों लगेंगे, पर मैं उसी आशा में निरंतर मुदित बना रहता हूँ।" जीवन में मात्र निराशा पर ध्यान देने से कोई प्रगति हाथ नहीं लगती।

मनःस्थिति बदले तो परिस्थिति बदले

जिसने परिस्थितियों से समझौता कर लिया, वह हार गया। परिस्थितियों के विरुद्ध जो लड़ सका, मन:स्थिति उच्च बनाकर, जीवन-समर में लड़ सका—वही विजेता हुआ। यदि हमारे भीतर अपने जीवन के उद्देश्य को सफल, सार्थक करने की तीव्र अभीप्सा हो तो परिस्थितियाँ हमारे जीवन की परिभाषा नहीं बन सकती हैं।

बात यहाँ पर मन:स्थिति की है। उत्कृष्ट मन क्या नहीं कर सकता है? आवश्यकता है उसकी शक्ति को पहचानने की तथा उससे उभयपक्षीय निर्माण प्रस्तुत करने की। जब हम परिस्थितियों पर अत्यधिक जोर देते हैं, स्वयं को निर्बल एवं असहाय घोषित कर देते हैं, स्वयं की क्षमताओं से परिचित नहीं होते, तभी इस प्रकार की विसंगति खड़ी होती है कि हमारा अंत:करण हमारा साथ देना बंद कर देता है।

मन की ऊर्जा का भरपूर लाभ लेना है तो मन को बहुत महत्त्व देना छोड़ दीजिए, उसे ऐसा बनाइए ताकि उससे उच्चतर प्रयोजनों में सहायता मिल सके। हमारा मन तभी अपना है, जब उसने किसी उच्च प्रेरणा हेतु अपना समर्पण करना सीख लिया हो।

मन की शक्ति को समझना ही वास्तविक अध्यात्म है एवं इस हेतु हमें अपनी आसक्ति को मिटाना चाहिए। जीवन के महत्त्वपूर्ण कार्यों को करने के लिए मन का निरासक्त होना आवश्यक है। हम अपने मन पर नियंत्रण प्राप्त करें, इससे शुभ कुछ हो नहीं सकता।

जब मन पर हमारा आधिपत्य होता है तो ही यह संभव है कि हम विपरीत परिस्थितियों के मध्य भी उत्कृष्ट मनोदशा का परिचय दें एवं जीवन को धन्य एवं महान बनाएँ।

मन की गुलामी से मुक्ति ही साधना का मूल केंद्र है। उसे जिसने समझ लिया, वह फिर परिस्थितियों का रोना नहीं रोता है। उसका असीम उत्साह एवं दृढ़ लगन स्वत: आदर्श सत्परिणाम उपस्थित करने की दिशा में बढ़ चलते हैं एवं उसे परिस्थितिवश विवश नहीं होना पड़ता है। ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

जहाँ चाह, वहाँ राह

अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अध्यात्म में तो यह बात अक्षरश: सत्य है, क्योंकि यदि हमारे मन में भगवान के लिए तपने, गलने एवं सुधरने की लालसा है, हम परिस्थितिवश स्वयं को डुबो नहीं लेते, हममें असीम धैर्य एवं सत्साहस की प्रेरणा है तब हम अपना पथ स्वयं बनाना जान जाते हैं। तब ही यह संभव है कि हमारे द्वारा वे कार्य बन पड़ें, जिन्हें कि आदर्श एवं अनुपम कहा जा सके।

जीवन का यह महत्त्वपूर्ण सिद्धांत सब को याद कर लेना चाहिए कि बिना मन:स्थिति में परिवर्तन किए, बिना स्वयं को सुधारे आप जीवन का महत्त्वपूर्ण लाभ नहीं उठा सकते हैं। अपने मन का मालिक होने में ही भलाई है, शेष तो आत्मप्रवंचना भर है। इसलिए पहला कार्य है, अपने मन पर संपूर्ण एवं एकपक्षीय नियंत्रण स्थापित करना, उसे एक दैवी-वाहन के रूप में प्रयुक्त करना तथा उससे महत्त्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त करना।

जब मन इस स्तर का बन जाता है, तो ही उससे अनेकानेक अनुदान एवं वरदान प्रस्तुत करना संभव होता है। मन को पूर्णरूपेण समझना ही अध्यात्म है। आज हर जगह परेशानी है, विषय-विकार हैं तथा जीवन की कठिनाई दिनोंदिन बढ़ती चली जा रही है, वह इसीलिए क्योंकि हमने मन की शक्ति को पहचानने एवं उसका सदुपयोग करने की ठानी नहीं है।

मन हमारा बेकारी में पड़ा रहता है, उसे यह बोध ही नहीं कि वह किस महान तत्त्व के अनुशीलन से अनभिज्ञ है। सत्य यह ही है कि जो मन को जीत ले वही भाग्यवान, जो मन से हार जाए वही अपाहिज।

हम यह समझें कि इस मन का करना क्या है? यह बात-बात पर हमको परेशान किया करता है, फँसाता है, झुलाता है, कुछ विशिष्ट करने नहीं देता। यह मन जो कि पदार्थ का ही एक साँचा भर है उस दैवी पुकार का प्रतिनिधि है, जिसमें कि मनुष्य की अहंता, वासना एवं तृष्णा नष्ट होकर एवं मनुष्य नया बनकर स्वयं के सौभाग्य को सराहता है।

वास्तविक वस्तु चेतना है एवं मन उसी से हेर-फेर किया करता है, उसके कारण ही मन के प्रयास चला करते हैं। मनुष्य का जीवंत स्वरूप यदि देखना हो, उसे पहचानने की सामर्थ्य विकसित करनी हो तो इतना करना चाहिए कि मन के मूल में छिपी आसक्ति को पहचाना जाए और उससे दैवी-विधान अनुरूप कार्य लेने की क्षमता विकसित की जाए।

जड़ पदार्थ और चेतन सत्ता में इतना ही अंतर होता है कि एक प्रकृति की स्वचालित गतिविधि का अंग है, तो दूसरा आत्मा के दिशाकदमों से संचालित है। जिसने अपने मन को अनुकूल दिशा दी वह जड़वादी नहीं, चेतन सत्ता का प्रतिनिधि बन बैठता है। ऐसा व्यक्ति कुछ भी करे, उसके मूल में यही प्रेरणा रहती है कि कैसे आत्मा की अमरता, अखंडता एवं विश्व-स्वरूप को नियमन प्रदान कर, उसे व्यक्तित्व का अंग बनाया जाए।

जब हृदय की जाग्रति होती है तो चहुँओर एक ही प्रकाश दिखाई पड़ता है, वह है आत्मा का।

जिसने उसे देख लिया, वह यह भी समझ जाता है कि अंततः जीवन का प्रयोजन क्या है, स्वयं की सीमित मान्यताओं से ऊपर उठना एवं स्वयं के आत्मपरिष्कार एवं आत्मविस्तार द्वारा जीवन को क्रियान्वित करना। जिसने सचमुच अपने को ऊँचा उठाना सीख लिया, वही वास्तविक आत्मविजेता होता है तथा उसे जीवन की कोई भी परिस्थिति अपने प्रगति-पथ से डिगा नहीं सकती। यही वास्तव में मनःस्थिति की उच्च प्रतिष्ठा होगी। ❑

आचार्य शंकर और पंडित मंडन मिश्र के मध्य माहिष्मती नगरी में शास्त्रार्थ प्रारंभ हुआ। शास्त्रार्थ महीनों चला। अंततः मंडन मिश्र के गले में पड़ी पुष्पों की माला मुरझाने लगी। मान्यता थी कि शास्त्रार्थ के समय जिसके गले की माला मुरझाने लगे, उसे हारा माना जाने लगे।

यह देखकर पंडित मंडन मिश्र की विदुषी पत्नी भारती आगे आईं और शंकराचार्य से बोलीं कि भारतीय परंपरानुसार, पति-पत्नी दोनों एक होते हैं, यदि आप मुझे भी शास्त्रार्थ में पराजित कर सके तो ही विजेता कहला सकेंगे। आचार्य शंकर ने उनकी चुनौती स्वीकार कर ली।

आचार्य शंकर व भारती मिश्र के मध्य शास्त्रार्थ प्रारंभ हो गया। भारती ने आचार्य से कामशास्त्र से संबंधित प्रश्न पूछने आरंभ किए। आचार्य शंकर ने जीवनपर्यंत ब्रह्मचर्य का पालन किया, गृहस्थ धर्म से संबंधित जिज्ञासाओं का उत्तर देना उन्हें कठिन जान पड़ा। उन्होंने प्रश्नों का उत्तर देने के लिए भारती से समय माँगा और एकांत क्षेत्र में जाकर, तपशक्ति से अपने सूक्ष्मशरीर को एक राजा के मृत शरीर में परकाया प्रवेश कर प्रविष्ट किया।

राजदेह के माध्यम से उन्होंने कामशास्त्र में प्रवीणता अर्जित कर, लौटकर भारती को शास्त्रार्थ में पराजित किया। इसके उपरांत दोनों विद्वज्जनों मंडन व भारती मिश्र ने शंकराचार्य का शिष्यत्व स्वीकार किया, परंतु भारती के कारण शाक्त-परंपरा का ज्ञान शंकराचार्य द्वारा अर्जित करने के कारण, आज भी भारती को शंकर मठों में शक्ति प्रतीक के रूप में माना जाता है।

बच्चों को मन से परिचित कराएँ

इस संसार का सबसे बड़ा कार्य है आत्मपथ उद्घाटित करना। उसके लिए विभिन्न उपाय अपनाए जाते हैं, परंतु वास्तव में वे सभी एक ही हैं। यहीं पर बच्चों के विकास संबंधी महत्त्वपूर्ण तथ्य उभरकर आते हैं।

उनका मन सूक्ष्म होता है और कुछ भी ग्रहण करने के योग्य होता है। यदि उन्हें ज्ञान की उन्नत प्रणाली के दर्शन न कराए गए तो उनका भविष्य उज्ज्वल कैसे बनेगा?

भीतर की तड़पन को समझाने वाला विज्ञान अपने आप में अनूठा है। उसका अवलंबन लेने पर महान कृपा प्राप्त होती है। बचपन में इस बात की शिक्षा दी जाए कि हम कौन हैं, हमारा यथार्थ क्या है तथा जीवन किस प्रकार जिएँ, ताकि उन्नतिशील हो सकें।

जैसे-जैसे आयु बढ़ती है, वैसे ही प्रतिभा प्रखर होने लगती है। यौवन उदित होकर प्रकाशवान व्यक्तित्व को जन्म देता है—यही महत्त्वपूर्ण है।

हमसे गलती कहाँ हो गई? वर्तमान पीढ़ी पालन-पोषण से रहित दिखाई देती है। उनका शरीर बड़ा हो गया, परंतु जिस चेतना पर ध्यान दिया जाना चाहिए था, उसे विस्मित किए रखा। परिपक्वता आएगी, तभी हमारा मनुष्य रूप सार्थक है, अन्यथा इसे भार कहना उचित होगा। यह जिन विविध रूपों में प्रकट होता है, उन्हें देख इसकी विलक्षणता का भान होता है।

यदि पूर्णतः ईश्वरपरायण बना जा सके तो एक अद्भुत सौभाग्य का उदय होगा। उसके लिए मन को प्रशिक्षित किया जाना है, जो कि बचपन से ही संभव है। बड़े होकर हम अधिक हठी और निष्ठुर हो जाते हैं और वह कोमलता नहीं रहती, जिससे कि नए अनुभवों को स्वीकारा जा सके।

जिज्ञासा की तीव्र ललक भी इसी आयु की देन है, अतः समय रहते संस्कारों का बीजारोपण किया जाए। ऐसा करने पर मलिनता एवं कुप्रभाव टिकने न पाएँगे। एक आदर्श चरित्र के निर्माण हेतु यही कुंजी है।

हमारी सभ्यता जी उठेगी यदि बच्चों को अंतरंग की विशेषता से परिचित कराया जाए। मन अनेकों गुणों से सुसज्जित हो सकता है तथा विकृति का जन्मदाता भी। उसे कैसे उपयोग में लाना है, यही विद्या है।

समस्त क्रियाकलापों को इसी केंद्र से संचालित करना अध्यात्म विज्ञान है। हमारी पाठ्यपुस्तकों में भीतर के अनुसंधान हेतु निर्देश हों। जानकारी सीमित होती है, परंतु बोध-क्षेत्र विशाल है। यदि विषय के साथ-साथ अंतिम सत्य लेकर चलें तो पूरी व्यवस्था नवीनीकृत होगी।

परिवार मान्यताओं एवं धारणाओं पर नहीं, उत्कर्ष एवं सहयोजन से प्रेरित हों। वे बच्चों को सही दिशा दिखाएँ, उन्हें महामानवों की जीवनगाथाएँ, संस्कृति के अमर संदेश, वर्तमान का वृहद् अवलोकन प्रदान करें। उसी में नवनिर्माण पदार्पित होगा, परंतु सबका मूल मानसिक शिक्षा से ही ओत-प्रोत है।

योगाभ्यास की विधियाँ वह नहीं कर सकतीं जो कि मन के दर्पण के संज्ञान पर होने लगेगा। मन

की अधिष्ठाता आत्मा है, आत्मा इंद्रियों के माध्यम से क्रियाशील है, परंतु स्वयं में अकर्त्ता है। प्रकृति के गुण हमें प्रेरित कर रहे हैं, परंतु स्व-बोध और स्व-अनुशासन से उसके पार भी जाया जा सकता है, जो कि जीवन लक्ष्य है।

यह बात कथा-कहानियों से कितनी मेल खाती हो, परंतु इसका सार यही है कि मन को पूर्णरूपेण जान लिया जाए, तदुपरांत कार्यक्रम बने तथा अपनी सर्वोच्च संभावना के दर्शन में कमी न रह जाए। हमें अपने बच्चों को बचपन से ही उनके भीतर के ईश्वर की सुनना सिखाना चाहिए तथा इस प्रक्रिया में मन के स्वभाव से परिचित होना अत्यंत आवश्यक है। ❑

एक घर के मुखिया को अभिमान हो गया कि उसके बिना किसी का गुजारा नहीं चल सकता। वह घर के सभी सदस्यों के साथ बुराई से पेश आने लगा तो घर के सदस्यों ने कुलगुरु से उसकी शिकायत की। कुलगुरु ने उसे बुलाया व समझाया तो वह बोला—"ये लोग बेकार की बातें करते हैं, मैं नहीं रहूँगा तो इनका ध्यान कौन रखेगा?" गुरु बोले—"पुत्र! जो सबका ध्यान रखता है, वही इनका भी ध्यान रखेगा।"

मुखिया बोला—"ऐसा कैसे संभव है?" गुरु बोले—"देख तू ऐसा कर कि एक माह किसी और नगर चला जा, फिर देख कि भगवान तेरे परिवार की देख-भाल करते हैं या नहीं?" मुखिया ने ऐसा ही किया, उसने अपने विषय में अफवाह फैला दी कि उसे जंगल में लुटेरों ने मारकर फेंक दिया है।

उसके घर में शोक का वातावरण छा गया, परंतु लोग उसके घरवालों की मदद को भी आगे आ गए। किसी ने उसके पुत्र को नौकरी दे दी तो कुछ लोगों ने मिलकर उसकी पुत्री का विवाह करा दिया।

एक माह बाद मुखिया लौटा तो उसने अपने घर को पहले से भी ज्यादा अच्छा पाया। उसका हृदय भी बदल गया। उसे जीवित देख पहले तो उसके घरवाले चिंतित हुए कि वह कहीं पुराना बुरा व्यवहार आरंभ न कर दे, परंतु फिर उसका परिवर्तित हृदय देख, उन्होंने उसे प्रेम से अंगीकार कर लिया और सब सुख से रहने लगे।

अस्मिता की रक्षा के लिए युद्ध

अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा के लिए ही युद्ध की अनिवार्यता है। शांति का संवाद जब समाप्त हो जाता है, तब युद्ध ही एकमात्र विकल्प रह जाता है। युद्ध को केवल अंतिम विकल्प के रूप में प्रयोग करना चाहिए। जीवन में शांति के साथ संघर्ष भी जुड़ा है। पश्चिमी देशों में युद्ध के मनोविज्ञान पर बहुत काम हुआ है और वहाँ युद्ध के विभिन्न पहलुओं पर अनेक दृष्टिकोणों से विचार किया गया है। हमारे देश में भी इस दृष्टि से विशेष चिंतन हुआ है। वह गंभीर विचार या दर्शन के स्तर पर भी उभरा है।

इस देश में भी बड़े-बड़े युद्ध हुए। महाभारत का युद्ध तो मानव इतिहास की अद्वितीय घटना है। शायद उस युद्ध में हुए विनाश का आघात इतना प्रबल था कि इस देश की पूरी मानसिकता युद्ध कर्म से केवल विरत ही नहीं हुई, उससे विरक्ति भी अनुभव करने लगी। हमारा संपूर्ण चिंतन आत्मा, परमात्मा, मोक्ष, माया और सृष्टि की उत्पत्ति की गुत्थियों को सुलझाने की ओर मुड़ गया, जहाँ सारा संसार और उसके सभी क्रियाकलाप मिथ्या दिखने लगे, केवल ब्रह्म ही एकमात्र सत्य रह गया।

युद्ध दर्शन का विकास न हो पाने का एक प्रमुख कारण यह है कि यहाँ जीवन-मृत्यु की सभी समस्याओं का अंतर्भेदन व्यक्तिमुखी हुआ, समाजमुखी नहीं। युद्ध का अपना एक कौशल है। इससे आगे बढ़कर उसका एक पूरा दर्शन है। प्राचीनकाल से यहाँ चार पुरुषार्थों की चर्चा होती रही, जिन्हें 'पुरुषार्थ चतुष्टय' कहा जाता है। ये हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। ये चारों पुरुषार्थ व्यक्ति के निजी जीवन से ही अधिक संबंध रखते हैं।

इनका पूरे समाज या पूरे राष्ट्र के साथ संबंध होना आवश्यक नहीं है, किंतु युद्ध एकाकी क्रिया न होकर सामूहिक कर्म है। युद्ध कर्म पूरे समाज के साथ जुड़कर ही पूर्ण होता है, लेकिन इस सामूहिकता के प्रदर्शन पर अपने देश में कोई शास्त्र नहीं लिखा गया।

यहाँ की समाज-व्यवस्था में युद्ध-कर्म, जब वह अनिवार्य हो जाए तभी होता था और वह भी मुख्यतया समाज के केवल एक वर्ग क्षत्रियों तक ही सीमित रहा है। पूरे समाज में यह कर्म अधिक व्याप्त नहीं था। बहुत-सी प्रजा इससे विरत थी और इसे अपना कार्य नहीं मानती थी।

युद्ध एक पूरा दर्शन है। जीवन-दृष्टि है। इस बात को संभवत: सबसे पहले गुरु गोविंद सिंह ने आज से 300 वर्ष पूर्व आत्मसात् किया था। उन्होंने अनुभव किया था कि कृपाण हाथ में लेकर युद्ध भूमि में जाकर शत्रु से भिड़ जाना ही पर्याप्त नहीं है। यह काम तो इस देश के सेनानी सदियों से करते आ रहे थे।

आवश्यकता थी कि युद्ध कर्म को किस प्रकार लोगों की मानसिकता का हिस्सा बना दिया कि उनके लिए यह एक पूरा जीवन दर्शन बन जाए। इससे बड़ी बात यह कि इस कर्म में केवल कुछ लोगों की नहीं, वरन शत-प्रतिशत लोगों की भागीदारी कैसे प्राप्त की जाए।

गुरु गोविंद सिंह ने इस कार्य को संपन्न करने के लिए व्यक्ति और समाज के उद्देश्य बदल दिए जब 'आव (आयु) की अउध (अवधि) विदान

बने अति ही रण मैं तब जूझ मरौ' का आदर्श लोगों के सामने रख दिया। **'सवा लाख से एक लड़ाऊँ'** का संकल्प प्रकट किया।

हरि, बनवारी, गोपाल, केशव, माधव, बंसीधर, रणछोड़दास, रास बिहारी जैसे इष्ट नामों के स्थान पर खड्गकेतु, असिपाणि, बाणपाणि, चक्रपाणि, दुष्टहंता, अरिदमन, सर्वकाल, महाकाल जैसे योद्धा प्रकृति के नाम प्रचारित किए और इस दर्शन की पुष्टि के लिए वीर रस से परिपूर्ण साहित्य की रचना स्वयं की एवं अन्य कवियों से भी करवाई।

उन्होंने लोगों के नाम बदल दिए। खैराती, फकीरा, घसीटा, रुलदू, निचकू, भिखारी, मंगतू जैसे नाम बदलकर उन्हें अजीत सिंह, जुझार सिंह, रणजीत सिंह, रणवीर सिंह, शेर सिंह जैसे नाम दे दिए।

उनका रूप-रंग बदल दिया, वेशभूषा बदल दी। जिन्होंने कभी तलवार उठाकर नहीं देखी थी, उनके हाथ में तलवार पकड़ा ही नहीं दी, उसे धारण करना अनिवार्य भी कर दिया। अस्त्र-शस्त्र को देवतुल्य बनाकर उनकी प्रशस्ति की। **'शस्त्रनाम माला'** नाम का एक पूरा ग्रंथ शस्त्रों की स्तुति में लिख दिया।

गुरु गोविंद सिंह ने सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यह किया कि उन्होंने उपेक्षित, पीड़ित और कमजोर लोगों में ऐसा आत्मविश्वास उत्पन्न कर दिया कि कुछ समय बाद ही वे दुर्दांत आक्रमणकारियों का मुकाबला करने, उन्हें पराजित करने और विश्व के सर्वश्रेष्ठ सैनिक होने का गौरव प्राप्त करने में सफल हो गए।

युद्ध दर्शन का मूलमंत्र यह है कि इतने दुर्बल कभी न बनो कि किसी के मन में हमको लूटने और गुलाम बनाने का लोभ उत्पन्न हो जाए। गुरु तेगबहादुर की उक्ति है **'भय काहू को देति नहि, ना भय मानत आनि।'** मतलब कि किसी को भयभीत न करो, न ही किसी का भय मानो। इस कथन में किसी को भयभीत न करना भी महत्त्वपूर्ण है और किसी से भयभीत न होना भी महत्त्वपूर्ण है।

दुर्बल व्यक्ति या राष्ट्र किसी को भयभीत कैसे करेगा। शक्तिशाली व्यक्ति या राष्ट्र ही, जो किसी का भय नहीं मानता, किसी को भयभीत न करने की समझ और सामर्थ्य प्राप्त कर सकता है। भारत की राष्ट्रनीति शांति, अहिंसा और विश्ववंधुत्व के आदर्शों पर आग्रहशील रही है।

ये महत्त्वपूर्ण मानवीय मूल्य हैं। हमारी अपेक्षा यही रही है कि संसार के सभी लोग, सभी राष्ट्र

न हिंसा नैव कारुण्यं नौद्धत्यं न च दीनता।
नाश्चर्यं नैव च क्षोभः क्षीणसंसरणे नरे॥

—अष्टावक्र गीता, 17/16

अर्थात जिस मनुष्य का संसार क्षीण हो जाता है, उसके मन में न हिंसा जन्मती है और न करुणा, न उद्दंडता जन्म लेती है और न दीनता, न आश्चर्य जन्म लेता है और न क्षोभ।

इन आदर्शों को अपनाएँ और इन पर चलें—यह आवश्यक है, परंतु यह भी आवश्यक है कि जब प्रश्न अस्मिता की रक्षा का आ जाए तो उस आदर्श को भी अपनाया जाए, जिसे गुरु गोविंद सिंह ने प्रदर्शित किया था।

इतिहास आज वैसे ही युद्ध दर्शन की अपेक्षा कर रहा है। सहनशीलता कायरता नहीं है। आततताइयों, आतंकियों को प्रेम की भाषा समझ में नहीं आती है। अतः उनको इसी भाषा में समझाने की आवश्यकता है। इसके साथ ही समन्वय की भूमिका को भी जीवंत रखना चाहिए। ❑

आहार कैसे लें?

भोजन हमारे दैनिक जीवन का नित्य क्रम है, जिसके बारे में शायद ही कोई अधिक सोचता हो। स्वाद की चिंता तो अधिकांश लोगों को रहती भी है, लेकिन इसका पेट में जाने के बाद क्या प्रभाव होने वाला है, इस पर अधिक ध्यान नहीं जाता और भोजन को कैसे करें, इसको लेकर भी उदासीनता की स्थिति पाई जाती है।

आहार विज्ञानियों के अनुसार, यदि हम आहार को सही ढंग से ग्रहण करते हैं तो बहुत सारे शारीरिक-मानसिक विकारों से मुक्त रह सकते हैं और जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाने में यह छोटी-सी आदत निर्णायक भूमिका निभा सकती है।

भोजन को जल्दबाजी में बिना सही ढंग से चबाए उदरस्थ करने की कई हानियाँ हैं। एक तो भोजन पचता नहीं, दूसरा आँतों को दाँतों का काम करना पड़ता है।

अधचबे भोजन का पाचन तंत्र पर अनावश्यक दबाव पड़ता है। फिर जल्दबाजी से खाने पर भूख से अधिक भोजन उदरस्थ हो जाता है, जो आँतों में पड़ा सड़ता रहता है। यह पेट के तमाम तरह के विकारों को जन्म देता है।

यदि भोजन को सही ढंग से नहीं चबाया जाए, तो यह बिना पचे ही आमाशय से आँतों में आगे चला जाता है, जिसके कारण आँतों में बैक्टिरिया की अतिवृद्धि हो सकती है, जो पेट फूलने, अपच, पेट दरद, ऐंठन और अन्य पाचन संबंधी समस्याओं का कारण बन सकता है।

इससे भी आगे यह गंभीर होने पर सीने में जलन, एसिड रिफलक्स (खट्टी डकार), कुपोषण जैसी समस्याओं को जन्म दे सकता है। यहाँ तक कि जी मिचलाना, सिरदरद और त्वचा संबंधी समस्याएँ भी इसके कारण हो सकती हैं और दीर्घकाल में यह अनाज ज्यादा लेने का कारण बनता है, क्योंकि मस्तिष्क को समय रहते पेट भरने का संकेत नहीं मिल पाता, जिसका परिणाम भार में अनावश्यक वृद्धि होती है।

स्वादवश किए गए भोजन से जिह्वा की आदत भी बिगड़ जाती है। ऐसे में धीरे-धीरे सामान्य भोजन से वितृष्णा होने लगती है। फिर तले-भुने, मिर्च-मसालेयुक्त वसायुक्त स्वादिष्ट भोजन के नित नए प्रयोग प्रारंभ हो जाते हैं। नए-नए स्वादों के प्रयोग से जिह्वा की स्वादलोलुपता बढ़ती जाती है। इसके साथ जहाँ स्वास्थ्य चौपट होता है, वहीं भार भी बढ़ता जाता है और जल्दबाजी का भोजन प्रायः अस्थिर, अशांत मनःस्थिति में किया जाता है, जिसका मन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। फिर शास्त्रों में चर्चा है कि जैसा अन्न—वैसा मन।

आहार ग्रहण करते समय भी हम भोजन को संस्कारित कर सकते हैं। इसके लिए भारतीय परंपरा में भोजन से पहले मंत्रोच्चार व जल का घेरा लगाने का विधान है और प्रार्थना के भाव के साथ आहार ग्रहण किया जाता है। भाव रहता है हम भोजन को शरीर पोषण के लिए ले रहे, स्वाद का भाव इसमें गौण रहता है।

ऐसे में ईश्वर को अर्पित भोजन स्वाद बन जाता है और इस रूप में ग्रहण किया गया भोजन निश्चित रूप में हर दृष्टि से कल्याणकारी साबित होता है।

आजकल माइंडफुल ईटिंग की बात की जाती है, जो इसी का एक प्रारूप है, जिसके अंतर्गत हर

कौर पूरे होशोहवास में मुँह में डालते हैं और भाव रहता है कि इसको चबाते समय भोजन का एक-एक कण अलग हो रहा है, जो सूक्ष्मरूप में हमारे तन, मन, प्राण, बुद्धि व आत्मा का पोषण करने वाला है।

चबा-चबाकर भोजन करने के कई लाभ रहते हैं। पहला तो इससे आँतों को दाँत का काम नहीं करना पड़ता। पहले से ही दाँतों द्वारा सूक्ष्म किया गया भोजन सहज रूप में आगे बढ़ता है। आँतों पर अनावश्यक दबाव नहीं पड़ता है। धीरे-धीरे चबा-चबाकर खाने पर मस्तिष्क को भी स्पष्ट संकेत जाता है कि कब पेट भर गया।

वैज्ञानिक शोध के आधार पर पता चला है कि मस्तिष्क को यह समझने में 20 मिनट लगते हैं कि पेट भर गया है। इस संकेत के अभाव में प्राय: अधिक भोजन हो जाता है। चबा-चबाकर खाने पर उचित समय पर यह संकेत मस्तिष्क को मिल जाता है, जिससे अधिक खाने की चेष्टा पर स्वत: ही अंकुश लग जाता है और हमारा पाचन ठीक रहता है।

कुछ विशेषज्ञों का कहना है कि चबाकर खाने पर मस्तिष्क तक रक्त-प्रवाह में बढ़ोत्तरी होती है, जिससे मस्तिष्क अधिक सक्रिय रहता है। चबा-चबाकर खाने से भोजन की तृप्ति भी मिलती है और व्यक्ति भूख से अधिक नहीं खा पाता। इसके साथ हमारा भार नियंत्रण में रहता है।

भोजन में मिले कंकड़-पत्थर जैसे विजातीय तत्त्व भी चबाने के दौरान ही पकड़ में आते हैं, जिन्हें फिर दूर किया जा सकता है अन्यथा हम इनको उदरस्थ कर सकते हैं।

भोजन को चबाने के साथ मुँह में लार बनती है, जिसमें पाचक एंजाइम कार्बोहाइड्रेट्स के एक अंश को पचाकर माल्टोस में रूपांतरित करते रहते हैं, यह माल्टोस आगे भोजन के पाचन में सहायता करता है।

ये अम्लता के प्रभाव को निष्प्रभावी करने में सहायता करते हैं। उचित चबाने के साथ मुँह में बचे भोजन के अंश व बैक्टिरिया भी साफ हो जाते हैं, जो दाँतों के क्षय से बचाव करते हैं।

इस तरह मुँह का स्वास्थ्य भी ठीक रहता है। इस तरह चबा-चबाकर खाने से शरीर में उचित पोषण सुनिश्चित होता है। इससे जुड़े कुछ अनुकरणीय सूत्र इस प्रकार हैं—

❁ धीरे-धीरे चबाएँ और हर निवाले को उचित समय दें। औसतन 30 बार हर निवाले को चबा सकते हैं। यह आहार पर भी निर्भर करता है कि किस को कितना समय दें। कुल मिलाकर भोजन को लार में अच्छी तरह से घुल जाने देना चाहिए।

❁ निवाला छोटा ही रखें। एकदम मुँह को ठूँस कर न भरें। इस तरह आपके आहार का समय अधिक होगा और चबाने में भी आसानी होगी।

❁ भोजन करना निस्संदेह रूप में एक पारिवारिक एवं सामाजिक गतिविधि है, लेकिन खाते समय यथासंभव बातचीत न करें अथवा कम करें। चबाते समय बातचीत करने से प्राय: निवाला जल्दी निगल लिया जाता है और जब एक निवाला पूरी तरह से चब जाए व निगल लिया जाए, तभी अगला निवाला लें।

❁ भोजन के साथ पानी न पिएँ। यदि पीना ही हो तो भोजन से आधा घंटा पहले या आधा घंटा बाद पिएँ। खाते समय पानी पीने से बड़ा निवाला निगला जाता है, जो पेट को भ्रमित करता है कि यह कम पोषण में भी भर गया है।

❁ टीवी देखते या मोबाइल का प्रयोग करते समय भोजन न करें, ये भी अत्याहार (ओवर ईटिंग) का कारण बन सकते हैं और नियत समय पर ही भोजन का प्रयास करें। यह अभ्यास चयापचय प्रक्रिया को सुचारु रखने में सहायक रहता है व ज्यादा खाने से हमें रोकता है।

❁ दिनभर पर्याप्त मात्रा में जल का सेवन करें, इससे उपापचय का क्रम बेहतरीन रहता है व अनावश्यक खाने की आवश्यकता भी नहीं लगेगी। इसके लिए आहार में अधिक जलयुक्त फल व सब्जी को शामिल कर सकते हैं।

कुल मिलाकर शांत मन:स्थिति में चबा-चबाकर भोजन करना हमारे पेट के स्वास्थ्य को सुधारता है। पेट से जुड़ी समस्याओं से बचाव करता है। मस्तिष्क भी इसके साथ अधिक स्वस्थ एवं सक्रिय रहता है।

इसके साथ स्वस्थ एवं चुस्त-दुरुस्त तन-मन के साथ व्यक्ति दिनभर की चुनौतियों का सामना करने के लिए बेहतरीन ढंग से तैयार होता है और जीवन का परिपूर्ण आनंद ले पाता है। ❑

सोमदत्त नामक एक ब्राह्मण राजा भोज के पास मिलने के लिए पहुँचा और बोला—"महाराज! आपकी आज्ञा हो तो उज्जयिनी के नागरिकों को भागवत कथा सुना आऊँ। मुझे कुछ दक्षिणा प्राप्त हो जाएगी।" राजा बोले—"आप अभी कुछ और दिन भागवत पाठ का अभ्यास कीजिए।" ब्राह्मण ने सारी भागवत कंठस्थ कर ली और पुनः राजदरबार में उपस्थित हुआ, परंतु उसे इस बार भी सकारात्मक उत्तर न मिला। इस प्रकार वह ब्राह्मण कई बार राजा के समक्ष उपस्थित हुआ, पर उसे हर बार निराश ही लौटना पड़ा।

किंतु भागवत के निरंतर पाठ से उसके अंतर्मन में धीरे-धीरे भगवान के प्रति निष्ठा जाग्रत हो गई। उसके मन से तुच्छ कामनाएँ तिरोहित होने लगीं और सात्त्विक निष्ठाएँ जन्म लेने लगीं। इस बार जब वह बहुत दिनों तक राजदरबार में नहीं पहुँचा तो राजा भोज ने उसका पता लगवाया। सारी स्थिति का पता चलने पर उन्होंने सोमदत्त को उज्जयिनी बुलवाकर भागवत कथा सुनाने का आग्रह किया।

आश्चर्यचकित सभासदों ने पूछा—"यह ब्राह्मण जब स्वयं कई बार यहाँ आया तो आपने इसे उपेक्षित किया और आज आप इसे स्वयं भागवत कथा के वाचन का निमंत्रण देने पहुँचे। ऐसा क्यों?" राजा बोले—"पहले यह धन के लोभ में कथा करना चाहता था अब उसके अंदर से प्रभु-निष्ठा के बोल निकलते हैं।"

सच्ची श्रद्धा-निष्ठा का मूल्य नहीं होता।

क्रांतिदर्शी महर्षि अरविंद

महर्षि अरविंद घोष राजनीतिक क्रांति के महानायक, एक महायोगी, दार्शनिक, आध्यात्मिक विभूति, एक निपुण लेखक एवं कवि थे, जिन्होंने अतिमानस और आध्यात्मिक राष्ट्रवाद की अवधारणा दी थी। भारतीय स्वतंत्रता के राजनीतिक आंदोलन में उनकी भूमिका एक उल्का की भाँति रही, जो कुछ काल के लिए गगनमंडल में प्रकट हुई और अपने आलोक से युग को प्रकाशित कर सूक्ष्म पृष्ठभूमि में चली गई।

इसी पृष्ठभूमि में उनका इंटीग्रल योग, कालजयी साहित्यिक सृजन और भारत एवं विश्व के संदर्भ में उनके स्वप्न एवं भविष्यकथन उल्लेखनीय अवदान हैं, जिन पर संक्षिप्त प्रकाश यहाँ डाला जा रहा है। उनके जन्मदिवस 15 अगस्त के दिन देश को स्वतंत्रता मिलना कोई संयोग मात्र नहीं था।

श्री अरविंद घोष का जन्म 15 अगस्त, 1872 को कोलकाता के एक शिक्षित परिवार में हुआ था। उनके पिता डॉ० कृष्णधुन घोष एक सिविल सर्जन थे, जबकि उनकी माँ स्वर्णलता देवी एक महिला अधिकार कार्यकर्त्ता थीं। श्री अरविंद घोष के पिता पश्चिमी संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित थे और वे अपने बच्चों को पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा एवं संस्कार देना चाहते थे।

इस कारण उनकी पढाई-लिखाई दार्जिलिंग के एक ईसाई कॉन्वेंट स्कूल में प्रारंभ हुई और बाद में उन्हें इंग्लैंड के सेंट पॉल स्कूल में प्रविष्ट किया गया, जहाँ बालक अरविंद का उत्कृष्ट प्रदर्शन रहा और अपनी शैक्षणिक उपलब्धियों के आधार पर उन्होंने किंग्स कॉलेज, कैंब्रिज में छात्रवृत्ति के साथ अध्ययन किया।

मेधावी श्री अरविंद घोष ने सन्-1890 में भारतीय सिविल सेवा की प्रतियोगिता उत्तीर्ण की, लेकिन भारत के स्वतंत्रता संघर्ष के प्रति सचेष्ट श्री अरविंद औपनिवेशिक प्रशासक के रूप में कार्य नहीं करना चाहते थे।

इस कारण वे अनिवार्य घुड़सवारी परीक्षा में असफल होने के कारण स्वयं को अयोग्य घोषित करने में सफल रहे और सन्-1893 में भारत आए तथा महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ तृतीय की बड़ौदा राज्य की रियासत से जुड़े और यहाँ बड़ौदा कॉलेज के उप-प्राचार्य सहित विभिन्न प्रशासनिक एवं शैक्षणिक भूमिकाओं में वर्ष-1906 तक 13 वर्ष सक्रिय रहे। यही समय श्री अरविंद का आर्ष वाङ्मय के गहन पारायण एवं भारतीय संस्कृति से घनिष्ठ परिचय का भी रहा।

इसी के साथ श्री अरविंद भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भी गहराई से शामिल थे और ब्रिटिश शासन से पूर्ण स्वतंत्रता की वकालत कर रहे थे। बंगाल विभाजन के बाद सन्-1906 में वे बड़ौदा छोड़कर कलकत्ता (कोलकाता) में नवस्थापित बंगाल नेशनल कॉलेज के प्रिंसिपल बन गए।

श्री अरविंद एक कुशल एवं क्रांतिकारी लेखक भी थे। वंदे मातरम्, कर्मयोगिन और युगांतर जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से, श्री अरविंद ने युवा भारतीयों को स्वतंत्रता संग्राम में शामिल होने के लिए प्रेरित किया।

राष्ट्रवाद, पूर्ण स्वतंत्रता की वकालत की और जनआंदोलनों के लिए रणनीतियों की रूपरेखा तैयार करते हुए ब्रिटिश शासन को जड़ से उखाड़ फेंकने का आह्वान करते रहे।

एक क्रांतिकारी राष्ट्रवादी के रूप में, श्री अरविंद को वर्ष-1908 के अलीपुर बम कांड में आरोपित कर, अलीपुर सेंट्रल जेल में एक वर्ष के लिए एकांत कारावास की सजा सुनाई गई। अंततः देशबंधु चितरंजन दास की सहायता से उन्हें रिहा कर दिया गया।

श्री अरविंद घोष को ब्रिटिश शासन को समाप्त करने के लिए उनकी व्यावहारिक रणनीतियों के कारण भारतीय राष्ट्रवाद का पैगंबर कहा गया था।

जेल के एकांतवास को श्री अरविंद ने साधना में रूपांतरित कर दिया था, जहाँ शास्त्रों के गहन पारायण व योग-साधना के साथ वे कई आध्यात्मिक अनुभवों के साक्षी बने—जिनमें भगवान श्रीकृष्ण से साक्षात्कार, स्वामी विवेकानंद का सूक्ष्मशरीर से मार्गदर्शन उल्लेखनीय है।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि जेल से वे आध्यात्मिक अनुभवों से युक्त महर्षि अरविंद के रूप में बाहर निकले। महर्षि अरविंद घोष ने सन् 1910 में सक्रिय राजनीति छोड़ दी और अपनी आध्यात्मिक गतिविधियों को आगे बढ़ाने के लिए फ्रांसीसी उपनिवेश पांडिचेरी में चले गए।

पांडिचेरी में अपनी आध्यात्मिक सहयोगी मीरा अल्फासा के साथ उन्होंने अपना इंटीग्रल योगदर्शन विकसित किया और वर्ष—1926 में पांडिचेरी में श्री अरविंद आश्रम की स्थापना की, जो आध्यात्मिक साधना के लिए समर्पित साधकों का समुदाय था, जहाँ उन्होंने अपनी आध्यात्मिक सहयोगी मीरा अल्फासा को मार्गदर्शन सौंप दिया, जिन्हें सारी दुनिया में श्रीमाँ या दि मदर के रूप में जाना जाता है।

महर्षि अरविंद और श्रीमाँ द्वारा विकसित इंटीग्रल योग एक परिवर्तनकारी अभ्यास है, जिसका लक्ष्य मानवीय चेतना का तीव्र और पूर्ण विकास है, जो पृथ्वी पर उच्च चेतना और दिव्य जीवन प्राप्त करने के लिए शरीर, मन और आत्मा को एकीकृत करने पर केंद्रित है। महर्षि अरविंद की मुख्य गद्य रचना, दि लाइफ डिवाइन, इंटीग्रल योग के दर्शन पर आधारित है। उन्होंने कहा कि मोक्ष या मुक्ति की पारंपरिक खोज अंतिम लक्ष्य नहीं होनी चाहिए। इसी शरीर में, इसी धरा पर मानवीय चेतना का रूपांतरण किया जाना है और दिव्य जीवन मनुष्य की नियति है।

महर्षि अरविंद एक ऋषिकल्प व्यक्तित्व थे। श्री अरविंद ने एक ऐसे भविष्य की कल्पना की थी, जहाँ पदार्थ, जीवन और मन के सिद्धांतों को अतिमानस द्वारा प्रतिस्थापित किया जाएगा, जो अनंत और सीमित के बीच सेतु का निर्माण करेगा, जिससे प्रेम, सद्भाव, एकता और ज्ञान का आनंदमय अस्तित्व निर्मित होगा एवं अंततः पृथ्वी पर दिव्यता का प्रकटीकरण होगा।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान, श्री अरविंद और श्रीमाँ ने मित्रराष्ट्रों का खुलकर समर्थन किया, हिटलर को अंधकार की शक्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाला माना और मित्रराष्ट्रों की जीत के लिए आध्यात्मिक आवश्यकता में विश्वास किया तथा यथोचित सहयोग किया।

महर्षि अरविंद घोष एक दार्शनिक, महायोगी और एक निपुण लेखक एवं कवि थे। उनका साहित्यिक योगदान व्यापक और विविध है, जिसमें राजनीतिक निबंधों से लेकर आध्यात्मिक ग्रंथ और महाकाव्य शामिल हैं। सावित्री जिनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

एक महाभारतकालीन प्रतीक के इर्द-गिर्द गढ़ी गई यह उनकी अद्वितीय रचना है, जो 24,000 से अधिक पंक्तियों का एक महाकाव्य है, जिसे अँगरेजी की सबसे लंबी कविता होने का श्रेय प्राप्त है। यह एक आध्यात्मिक रूपक है, जो प्रेम, मृत्यु और मानव आत्मा की विजय के विषयों पर आधारित है।

श्री अरविंद के अन्य उल्लेखनीय कार्यों में दि लाइफ डिवाइन शामिल है, जो मानव विकास और आध्यात्मिक प्रगति के बारे में उनके दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है, और दि सिंथेसिस ऑफ योग, जो इंटीग्रल योग के सिद्धांतों और प्रथाओं का वर्णन करता है।

इनके अतिरिक्त गीता पर निबंध, संकलित कविताएँ और नाटक, मानव चक्र, मानव एकता का आदर्श और वेद आदि पर भी उनके उल्लेखनीय कार्य हैं। मालूम हो कि महर्षि अरविंद को दो बार नोबुल पुरस्कार के लिए नामित किया गया था, 1943 में साहित्यिक योगदान व वर्ष-1950 में विश्व शांति के लिए।

अंततः 15 अगस्त, 1947 को भारत को स्वतंत्रता मिली। यह दिन श्री अरविंद के पचहत्तरवें जन्मदिन का प्रतीक था, और ऑल इंडिया रेडियो के त्रिचिनापल्ली स्टेशन द्वारा उनसे एक संदेश माँगा गया और 14 अगस्त को पढ़ा गया। उन्होंने बहुत पहले ही भविष्यवाणी कर दी थी कि स्वतंत्रता अपरिहार्य है, लेकिन स्वतंत्रता के साथ ही दो देशों, भारत और पाकिस्तान में अप्रत्याशित विभाजन हुआ, जिसके साथ हत्या और उत्पात भी हुआ। हालाँकि श्री अरविंद विभाजन के खिलाफ थे, लेकिन वे घटनाओं के प्रवाह को रोकने में असमर्थ थे।

उन्होंने इसे महत्त्वपूर्ण पाया कि स्वतंत्रता की घोषणा उनके जन्मदिन पर की गई। अपने स्वतंत्रता के संदेश में, महर्षि अरविंद ने विश्व और भारत के लिए अपने पाँच सपनों की रूपरेखा सामने रखी—

(1) एक अखंड भारत। महर्षि अरविंद ने भारत को ब्रिटिश शासन से मुक्त और एक मजबूत, एकीकृत राष्ट्र के रूप में कल्पना की।

(2) एशिया का पुनरुत्थान। उन्होंने एशिया को एक महत्त्वपूर्ण शक्ति के रूप में पुनर्जीवित करने और विश्व मंच पर एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने का सपना देखा।

(3) शांति के लिए एक विश्व संघ। महर्षि अरविंद ने सभी राष्ट्रों को एक साथ लाने और शांति बनाए रखने के लिए एक विश्व संघ की कल्पना की।

(4) विश्व को भारत का आध्यात्मिक उपहार। उन्होंने भारत को विश्व को आध्यात्मिक ज्ञान और दर्शन प्रदान करने वाले एक महत्त्वपूर्ण स्रोत के रूप में देखा।

(5) मानव का उच्चतर चेतना की ओर उत्थान। महर्षि अरविंद ने मानव चेतना को उच्च स्तर पर ले जाने और एक अधिक जागरूक, उन्नत विश्व बनाने का सपना देखा।

महर्षि अरविंद भारत और पाकिस्तान के विभाजन से प्रसन्न नहीं थे और उन्हें आशा थी कि

दिवमारुहत् तपसा तपस्वी।

—अथर्ववेद 13/2/25

अर्थात तपस्वी तप से स्वर्ग को प्राप्त करते हैं।

वे फिर से एक हो जाएँगे। स्वतंत्रता के पश्चात श्रीमाँ ने पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान, बर्मा और श्रीलंका सहित उस भारत का नक्शा बनाया जिसे वे सच्चा भारत मानती थीं।

इस तरह महर्षि अरविंद के सपनों का भारत एक ऐसा आदर्श था, जो सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक रूप से उन्नत हो। उन्होंने भारत की एक ऐसे देश के रूप में कल्पना की जो न केवल स्वतंत्र और एकजुट है, बल्कि विश्व को आध्यात्मिक मार्गदर्शन भी प्रदान करता हो।

महर्षि अरविंद द्वारा घोषित ये स्वप्न अभी आंशिक रूप से साकार हुए हैं और भारत तीव्र गति के साथ इनकी पूर्णता की ओर अग्रसर दिखाई पड़ता है। ❑

वृक्ष-वनस्पतियों का अद्भुत संसार

वृक्ष-वनस्पति पृथ्वी के सौंदर्य को चार चाँद लगाने वाले निसर्ग के अद्भुत आच्छादन हैं, जो जीव-जंतुओं से लेकर मानव के लिए आवश्यक आहार, आश्रय से लेकर औषधियाँ एवं जीवन को सुखी-सुंदर बनाने वाले उपहार भेंट करते हैं। इन वृक्ष-वनस्पतियों के मध्य कुछ अपनी उपयोगिता तो कुछ अपनी विशिष्टता एवं विचित्रता के कारण सबका ध्यान भी आकर्षित करते हैं। प्रस्तुत है ऐसे ही कुछ अद्भुत वृक्ष-वनस्पतियों का रोचक संसार, जो रोमांचित करता है और कुछ ज्ञानवर्द्धन भी करता है।

गरम जलवायु में उत्पन्न होने वाले सामानिया समन नाम के पेड़ को वर्षा करने वाले पेड़ के रूप में जाना जाता है। दिन में इसकी पत्तियाँ सिकुड़ जाती हैं और शाम को जब ये खुलती हैं, तो इनमें एकत्र जल गिरकर बारिश का एहसास दिलाता है। मूलत: केंद्रीय व दक्षिण अमेरिका का यह पौधा भारत में भी पाया जाता है। 100 फीट ऊँचे इसके कई वृक्ष बैंगलुरु में भी पाए जाते हैं। गुवाहाटी स्थित वृहदाकार ब्रह्मपुत्र रेन ट्री अपने 12 फीट व्यास के कारण प्रख्यात है, जिसकी टहनियाँ टूटकर गिरती रहती हैं।

यह छायादार वृक्ष फर्नीचर, पेट दरद, रक्तचाप आदि के निवारण में भी सहायक रहता है। इस रेन ट्री या मंकी पॉड ट्री की फली खतरनाक हो सकती हैं, जो पकने पर गिर जाती हैं, जिन पर वाहन के फिसलने व चोट का भय रहता है। वसंत ऋतु में इसके गुलाबी व सफेद पुष्प की सुंदर छटा दर्शनीय रहती है। यह अद्भुत वृक्ष 80-100 वर्ष की आयु लिए होता है।

एशिया का टेलिग्राफ पौधा हवा न चलने पर भी लगातार पत्तियाँ फड़फड़ाता रहता है। संगीत के साथ यह वृक्ष झूमने लगता है, इस कारण इसे डांसिंग प्लांट भी कहा जाता है। विश्वभर के अनुसंधान केंद्रों में इस पर शोधकार्य चल रहा है। इसकी पत्तियों की गति के कारण के संदर्भ में कई परिकल्पनाएँ हैं।

एक, संभवत: सूर्य का अनुगमन करके प्रकाश को अधिकतम करने की इसकी एक रणनीति है। दूसरी, पत्तियों की तेज गति से होने वाली गतिविधि संभावित शिकारियों को रोकने के लिए होती है। तीसरी, पौधों की तितलियों की चाल की नकल शायद पत्तों पर तितली को अंडे देने से रोकने के लिए है।

यह उष्ण-कटिबंधीय एशियाई देशों में पाया जाने वाला झाड़ी पौधा है, जो विशेष कर भारत, बांग्लादेश, चीन, लाओस, मलेशिया, पाकिस्तान और थाईलैंड में पाया जाता है। इसे औषधीय गुणों से भरपूर माना जाता है। तीन से पाँच मिनट की अवधि में इसके पतों के घूमने के कारण इसकी तुलना सेमाफोर टेलीग्राफ से की गई थी, जो समायोजन पैडल वाली एक संरचना थी, जिसे दूर से देखा जा सकता था, जिसकी स्थिति सेमाफोर में एक संदेश बताती थी।

इस कारण इसका एक नाम सेमाफोर प्लांट भी है। चार्ल्स डार्विन ने इसका विस्तृत वर्णन 1880 में लिखी गई अपनी पुस्तक 'दि पॉवर ऑफ मूवमेंट इन प्लांट्स' में किया था।

कैलिफोर्निया में मोंटेरी प्रायद्वीप के 17-मील ड्राइव पर लोन साइप्रस ट्री सबका ध्यान आकर्षित

करता है, जो सड़क के किनारे प्रशांत महासागर के शानदार दृश्यों के साथ एक चट्टानी चट्टान पर खड़ा है। सागर पर खडा यह वृक्ष पिछले लगभग 250 वर्षों तक समुद्री झंझावातों का सामना करता रहा है, जिसके परिणामस्वरूप इसके स्वरूप में निरंतर परिवर्तन हुए हैं।

यह सन्-1984 में आगजनी के हमले और सन् 2019 में एक भयंकर तूफान से बच गया। निस्संदेह रूप में यह वृक्ष उत्तरी अमेरिका में सबसे अधिक फोटो खिंचवाने वाले पेड़ों में से एक है, जिसकी पृष्ठभूमि में सेल्फीज लिए बिना आगंतुक नहीं रह पाते और इंस्टाग्राम को इसके दृश्यों से भरा देखा जा सकता है।

इसी तरह दक्षिणी बहरीन के रेगिस्तान के बीच रेत के टीले के ऊपर एक अकेला वृक्ष खड़ा है। इसके आस-पास मीलों तक कोई वनस्पति नहीं दिखाई पड़ती, क्योंकि चारों ओर बंजर रेगिस्तान पसरा हुआ है।

लोग आश्चर्यचकित हैं कि यह वृक्ष 400 वर्षों से एक ऐसे क्षेत्र में कैसे जीवित रह सकता है, जहाँ न तो कोई जल का स्रोत है, न ही यहाँ पर्याप्त बारिश होती है। वृक्ष लगभग 10 मीटर ऊँचा है, जबकि इसकी जड़ें 50 मीटर गहरी बताई जाती हैं। आश्चर्य नहीं कि इसे जीवन वृक्ष भी कहा जाता है। हर वर्ष हजारों लोग इसको देखने के लिए आते हैं। इसे धरती पर सबसे रहस्यमयी स्थलों में से एक माना जाता है।

मेडागास्कर का एवेन्यू ऑफ दि बाओबाब्स, विश्व के लोकप्रिय आकर्षक पर्यटकस्थलों में से एक है। लगभग 25 ग्रैंडिडियर बाओबाब्स का यह बाग 260 मीटर लंबी सड़क के किनारे स्थित है और 2800 वर्ष पुराना है। इसे यहाँ राष्ट्रीय स्मारक का दर्जा भी प्राप्त है। मालूम हो कि बाओबाब पेड़ को हिंदी में गोरखचिंच या हाथी का पेड़ भी कहा जाता है।

यह एक अनोखा पेड़ है, जो अपने मोटे तने और उलटे दिखने वाले आकार के लिए जाना जाता है। मूलत: अफ्रीका, मेडागास्कर और ऑस्ट्रेलिया में पाए जाने वाले इस वृक्ष को जीवन का वृक्ष भी कहा जाता है; क्योंकि यह भोजन, आश्रय से लेकर पारंपरिक चिकित्सा में प्रयुक्त होता है। इसके मोटे तने में बहुत अधिक मात्रा में जल एकत्र होता है, जो सूखे के समय उपयोगी होता है। इस वृक्ष की आयु हजार वर्ष तक देखी गई है।

कुछ पौधे अपने विशिष्ट आकार के पुष्पों के कारण भी जाने जाते हैं। वी आर्किड पौधे के फूल देखने में शहद की मक्खियों जैसे लगते हैं, जबकि जामुनी आर्किड का प्रत्येक फूल बड़ी-सी टोपी पहने बालक जैसा दिखाई देता है। वुचर्स ब्रूम पौधे में पत्तियाँ नहीं उगतीं, किंतु इसकी शाखाएँ पत्तियों जैसी ही होती हैं।

इसके फूल भी इन पत्तीनुमा शाखाओं के मध्य से ही उगते हैं। मुसाएंडा इरिथ्रोफाइला का फूल इतना अनाकर्षक होता है कि कीट-पतंगे इसका परागण कभी नहीं करते। इसलिए प्रकृति ने इसे एक चमकीला लाल बाह्यदल प्रदान किया है। पिलोस्टाइल्स थरबेरी को विश्व का सबसे छोटा पुष्पित पौधा माना जाता है।

यह एक परजीवी पौधा है, जो डहेलिया श्रब के तनों पर उगता है और छोटे-से दाने जैसा दिखता है, यद्यपि उसमें से प्रत्येक एक स्वतंत्र पौधा होता है।

मध्य आस्ट्रेलिया का कैंडलस्टिक्स ऑफ दि सन, एक ऐसा पौधा है, जिसमें मोमबत्ती की आकृति का एक फूल सात वर्ष में केवल एक बार लगता है।

पेरु के कॉर्डिलेरा पर्वतों पर उगने वाले पृथ्वी के प्राचीनतम पौधों में से एक पुया रमांडी, जिसके पौधे में कलियों से भरी एक 33 फीट तक ऊँची डाली होती है और यह रेजिन अर्थात राल से इतना संतृप्त होता है कि चरवाहे देहातों में प्रकाश के लिए

इसे जलाते हैं। यह पौधा 300 वर्षों तक जीवित रहता है।

टेक्सस बकाटा एक सदाबहार पौधा है, जिसे तालिसपत्र, बिरमी या ज़रनब आदि नामों से भी जाना जाता है। यह पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध के पहाड़ी क्षेत्रों में मिलता है।

भारतीय उपमहाद्वीप में यह वृक्ष हिमालय क्षेत्र में मिलता है। इसके रस भरे फल तथा शाखाएँ मनुष्य व पशुओं के लिए अत्यंत विषैले होते हैं, हालाँकि चिड़िया इन्हें बिना किसी दुष्प्रभाव के खा सकती हैं।

इसके बीज के इर्द-गिर्द एक लाल बीजचोल बनता है। यह रसदार और मीठा होता है, जिस कारण चिड़ियाँ इसे बीज सहित खा जाती हैं और दूर-दराज के क्षेत्रों में इसके बीज को गिरा देती हैं।

इस वृक्ष को कैंसर जैसे रोगों में उपचार के लिए औषधीय गुणों से भरपूर माना जाता है। इसके बीजों में विद्यमान टैक्सोल नामक विषैले रसायन का प्रयोग कैंसर के उपचार में किया जाता है। औषधि बनाने के लिए इस रसायन की भारी माँग के चलते आज हिमालयी तालिसपत्र का अस्तित्व ही खतरे में आ गया है।

रैमी भी एक रोचक एवं उपयोगी झाड़ी पौधा है, जिसे रीआ या चीनी घास भी कहा जाता है। यह कपड़े बुनने योग्य रेशे पैदा करती है, जिसकी एक वर्ष में कई फसलें उगाई जा सकती हैं। पूर्वी एशिया का यह देशज पौधा अब विश्व के कई उष्ण-कटिबंधीय क्षेत्रों में उगाया जाता है। पौधे के पक जाने पर इसे काटकर इसके पत्तों व टहनियों से रेशे की परतें निकाली जाती हैं।

इसके साथ छाल व गोंद को अलग किया जाता है। इसका रेशा अन्य वानस्पतिक रेशों से अधिक मजबूत होता है और चमक में रेशम को भी मात देता है।

रैमी के रेशों से गैस, मैटल, कागज, रस्सियाँ, जाल, अंतर्वस्त्र, किरमिच व इसी प्रकार के अन्य उत्पाद तैयार किए जाते हैं। वर्ष भर में इसकी चार फसलें प्राप्त की जा सकती हैं। इसके अपने विशिष्ट औषधीय गुण भी हैं। उच्च रक्तचाप को कम करने व हृदय रोग के निवारण में इसका औषधीय उपयोग किया जाता है।

कुछ वृक्षों को उनके ऐतिहासिक संदर्भ के कारण जाना जाता है। स्पाइना क्राइस्टी नामक झाड़ी को थार्न ऑफ क्राइस्ट भी कहा जाता है, जिसके काँटों से बना ताज पहनकर ईसा सूली पर चढ़े थे, आज भी यह केवल होलीलैंड में उगती है। पहाड़ी पीपल जो जेन्ना, जर्मनी में नैपोलियन से युद्ध समाप्ति के प्रतीक स्वरूप 1815 में रोपा गया था, 1 अगस्त, 1914 को अचानक ढह गया। ठीक उस दिन, जब जर्मनी में प्रथम विश्व युद्ध प्रारंभ हुआ। अत: इसे भी शांति वृक्ष के रूप में याद किया जाता है।

मेजर ओक, इंग्लैंड के शेरवुड वन के केंद्र में स्थित बाँस का एक ऐसा वृहद् एवं पुरातन वृक्ष है, जिसे यहाँ 1,000 वर्षों से खड़ा माना जाता है। इसका भार लगभग 23 टन अनुमानित है, इसकी कैनॉपी या छतरी 28 मीटर चौड़ी है। इस वृक्ष में लगभग डेढ़ लाख बलूत के फल लगते हैं। माना जाता है कि रॉबिन हुड़ ने अपने कट्टर दुश्मन नॉटिंघम के शेरिफ से छिपने के लिए इसके खोखले तने में शरण ली थी।

दक्षिणी अफ्रीका का पैचीपोडियम नामाक्वेनम पौधा यात्रियों द्वारा मार्गदर्शक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है; क्योंकि यह हमेशा उत्तर की ओर झुकता है। अत: इसे कुतुबनुमा पौधा या दि कॉम्पस प्लांट भी कहा जाता है। ब्रॉ, इटली में एक काले काँटों वाला ब्लैकथॉर्न वृक्ष है, जो विगत 629 वर्षों से प्रतिवर्ष शीत ऋतु के सबसे ठंढे दिन पर फूलों से लद जाता है। इस प्रकार वृक्ष वनस्पतियों का संसार भी एक अद्भुत संसार है। ❑

प्रभावी संचार के सूत्र

संचार अपने विचार, भाव, ज्ञान एवं जीवन अनुभवों को दूसरों के साथ साझा करने का नाम है। यह व्यक्ति के साथ भी हो सकता है और समूह के बीच भी। संचार को प्रभावी तब माना जा सकता है, जब इसके माध्यम से संप्रेषित संदेश स्पष्टता और वांछित परिणाम के साथ श्रोता, पाठक या दर्शक तक पहुँचता है और अपने लक्षित उद्देश्य को पूरा करता है।

हालाँकि संचार सदैव द्विपक्षीय प्रक्रिया है, अत: इसके प्रभावी होने के लिए संदेशवाहक के साथ संदेश ग्रहणकर्त्ता दोनों की भूमिका रहती है। अत: दोनों से उचित मनोभूमि एवं प्रक्रिया के पालन की अपेक्षा की जाती है। संचार के प्रभावी होने के लिए इसकी प्रक्रिया के विभिन्न घटकों, यथा—संदेशवाहक, संदेश, संदेश माध्यम, संदेशग्राहक तथा वातावरण एवं प्रतिपुष्टि पर ध्यान देना भी अभीष्ट रहता है।

इन सब पक्षों पर ध्यान देने के उपरांत ही संचार समग्र रूप में प्रभावी होता है। संदेशवाहक का अपने विषय का जानकार होना अनिवार्य है। इसके लिए उसके अंदर ज्ञानार्जन की अभीप्सा होनी चाहिए, उसकी अध्ययन की वृत्ति सामान्य व्यक्ति से उच्चतर होनी चाहिए।

साथ ही संदेश संप्रेषण को प्रभावी बनाने के लिए उचित तैयारी की अपेक्षा की जाती है। सर्वोपरि संदेशवाहक का संवेदनशील होना महत्त्वपूर्ण है, जिससे कि वह सकारात्मक भाव के साथ अपने संदेश को संप्रेषित कर सके। साथ ही उसका दूसरे व्यक्ति या समूह के प्रति सम्मान का भाव होना चाहिए और सर्वोपरि संदेश के प्रति आत्मविश्वास का होना अभीष्ट है। संदेश का स्पष्ट व सटीक होना आवश्यक है, तभी वह प्रभावी होगा।

संदेश की अस्पष्टता एवं अनावश्यक रूप से विस्तार देने का प्रलोभन इसके प्रभाव को न्यून करते हैं, जिनसे बचना चाहिए। संदेश में समग्रता भी अभीष्ट है, साथ ही इसे सत्य पर आधारित होना चाहिए। तथ्यों की अप्रमाणिकता संदेश के प्रभाव को संदिग्ध बना सकती है। साथ ही सत्य का संप्रेषण कल्याणकारी होना चाहिए व सुरुचिपूर्ण ढंग से इसका प्रस्तुतीकरण होना चाहिए।

एक माध्यम के रूप में व्यक्ति का व्यक्तित्व माने रखता है। उसके शाब्दिक और गैर-शाब्दिक संदेश में तारतम्य होना चाहिए; क्योंकि संचार में मात्र शब्दों का प्रभाव नहीं होता, इसके पीछे निहित भाव, जो देह के हाव-भाव, चेहरे की भाव-भंगिमाओं के माध्यम से व्यक्त होते हैं, की भूमिका 60 से 93 % तक मानी गई है। अत: दोनों के बीच में तारतम्य का होना महत्त्वपूर्ण है।

इसके लिए संदेश-प्रापकों की प्रतिपुष्टि पर ध्यान देना भी आवश्यक रहता है। संचारक स्वयं के प्रति थोड़ी-सी सजगता के साथ श्रोताओं के हाव-भाव एवं प्रतिक्रिया को देखकर अनुमान लगा सकता है कि वे रुचिकर ढंग से संदेश को ग्रहण कर पा रहे हैं या नहीं और तदनुरूप संदेशवाहक अपने संदेश में आवश्यक परिमार्जन एवं हेर-फेर कर सकता है। संदेशग्राहक की भूमिका भी प्रभावी संचार में महत्त्वपूर्ण है। संचार के प्रभावी होने के लिए उसका ग्रहणशील होना अनिवार्य है।

उसमें सीखने का भाव होना चाहिए, विषय में रुचि होनी चाहिए तथा एक अच्छे श्रोता का धैर्य

होना चाहिए। संचार को प्रभावी बनाने में वातावरण में तमाम तरह के अवरोध सक्रिय रहते हैं, जिनका समय रहते निराकरण होना चाहिए। वातावरण का शोर, वह वाहनों का हो या पंखों का या अन्य, संचार-प्रक्रिया में न्यूनतम होना चाहिए। वातावरण में अत्यधिक गरमी या सरदी आदि का भी समाधान होना चाहिए।

इसके साथ भाषा में शब्द भंडार का अभाव, उच्चारण की त्रुटि, क्षेत्रीय प्रभाव आदि व्यवधान का काम करते हैं, जिनका उचित परिमार्जन होना चाहिए। संचार की द्विपक्षीय प्रक्रिया के प्रभावी होने के लिए संदेशवाहक व संदेशग्राहक, दोनों का मन शांत, स्थिर एवं एकाग्र होना चाहिए। यदि मन में शोर मचा है तो यह प्रभावी संचार में स्पष्ट बाधा है। मन में भय, क्रोध, राग-द्वेष आदि उद्वेग संचार को बाधित करते हैं।

इसी तरह से नकारात्मक मनोदशा, पूर्वाग्रह, दुराग्रह आदि प्रभावी संचार के बाधक तत्त्व हैं। सूचनाओं की अत्यधिकता भी एक बड़ा व्यवधान है; क्योंकि संदेश-प्रापकों में नई जानकारियों व ज्ञान को धारण करने की एक सीमा होती है, उससे अधिक होने पर संचार का प्रभाव नकारात्मक हो जाता है।

फिर सांस्कृतिक विविधता के चलते व्यक्ति की भिन्न मान्यता, धारणा एवं दृष्टिकोण भी प्रभावी संचार में बाधक बनते हैं, जिनको तैयारी के आधार पर अभ्यास के साथ कम किया जा सकता है। इसके लिए एकदूसरे की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का सामान्य बोध होना आवश्यक है।

संचार को प्रभावी बनाने के लिए कुछ बिंदुओं पर ध्यान देते हुए अभ्यास किया जा सकता है। सबसे पहले स्पष्ट एवं सटीक वार्त्ता करें, जो बोलें उसे पहले तोलें। श्रोताओं में आज इधर-उधर की बातें व अनावश्यक विस्तार सुनने का धैर्य व क्षमता नहीं रह गई है।

हृदय से निकले सरल संदेश सहज रूप में श्रोताओं के हृदय को स्पर्श करते हैं; जबकि बौद्धिक जाल-जंजाल में उलझा संदेश किसी तरह बुद्धि तक ही पहुँच पाता है। यहाँ किसी भी रूप में ज्ञान के महत्त्व को कम नहीं किया जा रहा है। तर्क, तथ्य एवं प्रमाण पर आधारित अनुभूत ज्ञान संचार को प्रभावी बनाता है।

इसके लिए समय रहते तैयारी आवश्यक हो जाती है। विषय पर उचित शोध, नोट्स, महत्त्वपूर्ण तथ्य, आँकड़ों का संकलन, कथानकों व संस्मरण के साथ तैयारी से यह कार्य सरल सहज हो जाता है और इसको जीवन में उतारने की भरसक चेष्टा के साथ संदेश अनुभव हो पाना, गंभीर रूप से प्रभावी हो जाता है।

फिर संदेश संप्रेषित करते समय अपनी दैहिक संचार की भाषा अर्थात हाव-भाव एवं भाव-भंगिमाओं पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। जिसका प्रभाव मौखिक संदेश से कई गुना अधिक रहता है। साथ ही बोलते समय अपने बात करने के लहजे पर भी ध्यान दें। लगातार बोलते रहने की अपेक्षा, बीच-बीच में रुककर संदेश को प्रभावी बना सकते हैं।

संचार में पारमार्थिक भाव का विकास महत्त्वपूर्ण है। दूसरों की भावनाओं की समझ के आधार पर दिया गया संदेश अधिक प्रभावी होता है। इसमें स्वतः ही शालीनता, मधुरता और सम्मान का भाव समाविष्ट रहता है। सर्वोपरि जीवन के अनुशासित होने और एक लक्ष्य पर केंद्रित रहने से संदेश उद्देश्यपूर्ण एवं प्रभावी बनता है; क्योंकि संचार में केवल तथ्यों, जानकारियों एवं सूचनाओं का संप्रेषण नहीं होता, जीवन का, इसके अनुभूत सत्यों का, श्रेष्ठ विचारों एवं सद्इच्छाओं का भी संप्रेषण होता है, जो जीवन लक्ष्य की समग्रता, जीवंतता एवं श्रेष्ठता के आधार पर कल्याणकारी एवं दूरगामी प्रभाव छोड़ने वाला सिद्ध होता है। ❑

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार–200

वाल्मीकि रामायण में निहित मानव मूल्य

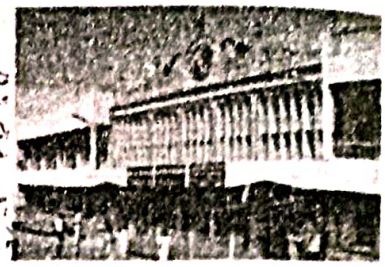

मनुष्य का लौकिक जीवन हो अथवा आध्यात्मिक, दोनों ही क्षेत्रों में उन्नति एवं उत्कर्ष का मूल आधार जीवन मूल्य हैं। मूल्यों के आदर्श को समझ करके ही मानवीय जीवन अपने चरम विकास की ओर अग्रसर हुआ और सभी स्तरों पर जीवन में सफलता प्राप्त की है। हमारी सनातन परंपरा में आदिकाल से मूल्यों का मापदंड ही मानवता के विकास एवं कल्याण की एकमात्र कसौटी रही है। यही कारण है कि भारतीय धर्म, संस्कृति, समाज एवं साहित्य में मानव मूल्यों के सापेक्ष ही चिंतन, विचार एवं व्यवहार की अभिव्यक्ति की जाती रही है।

मानव मूल्य क्या हैं? जीवन में इनकी आवश्यकता एवं महत्ता क्यों है? ऐसी अनेकों जिज्ञासाओं एवं प्रश्नों के समाधान से भारतीय शास्त्र भरे पड़े हैं। वेद, उपनिषद्, धर्मशास्त्र, महाकाव्य आदि में मुखरता से मानवीय मूल्यों के स्वरूप की विवेचना प्राप्त होती है। तत्त्वदर्शी ऋषियों को यह ज्ञात था कि जब तक इस संसार में मानव जीवन रहेगा, मानव मूल्यों की आवश्यकता सदैव रहेगी। इन मूल्यों के आलोक में ही वह अपने जीवन-पथ को पार कर सकेगा।

इसी भावना से उन्होंने मानव मूल्यों को मानवीय आचरण से संबद्ध करने की अनेकों अवधारणाएँ एवं प्रक्रियाएँ विनिर्मित कर जीवन पद्धति का निर्माण एवं निर्देशन किया है। धर्म, कर्त्तव्य, चारित्रिक अनुशासन, तप, साधना, त्याग सेवा आदि अनेक रूपों में मानव मूल्यों की व्यापकता से ऋषि संस्कृति ओत-प्रोत रही है। यही कारण है विश्व में हमारी संस्कृति की पहचान मूल्य संस्कृति के रूप में रही है।

चूँकि वर्तमान में समस्त मानव सभ्यता मूल्य संकट के दौर से गुजर रही है। मानव मूल्यों का ह्रास इस युग का सबसे बड़ा संकट और विश्व मानवता का दुर्भाग्य है। ऐसे में इस संकट का सार्थक व समुचित समाधान अत्यंत आवश्यक व इस युग की सर्वोपरि माँग समझा जाना चाहिए।

वैसे विगत कुछ दशकों से निरंतर मानव मूल्य पर विमर्श के मंच विश्व समाज में दिखाई देने लगे हैं, परंतु यथार्थ धरातल पर समाधान के रूप में ये कोई योगदान प्रस्तुत नहीं कर सके हैं, ऐसे में भारतीय संस्कृति विशेष के सनातन सिद्धांतों और प्रक्रियाओं की ओर उन्मुख होना स्वाभाविक एवं अत्यंत प्रासंगिक है।

उक्त संदर्भ में देव संस्कृति विश्वविद्यालय में मानव मूल्य को लेकर वर्ष-2020 में एक महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी शोधकार्य संपन्न किया गया है। यह शोध अध्ययन मानव मूल्यों के प्रति स्पष्टता, प्रेरणा और वर्तमान संदर्भ में मूल्य संकट के निवारण की दृष्टि से पर्याप्त जानकारी लेकर प्रस्तुत होता है।

इस विशिष्ट अध्ययन को विश्वविद्यालय के इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग के अंतर्गत शोधार्थी अजय पाल द्वारा पूर्ण किया गया है। शोधार्थी ने अपने इस शोध को विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पंड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ० मोना के निर्देशन में तैयार किया है।

इस शोध का विषय है—**'वाल्मीकि रामायण में निहित मानव मूल्य एवं वर्तमान में उनकी प्रासंगिकता।'** वाल्मीकि रामायण का आदिकाव्य के रूप में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें मानव जीवन के लक्ष्य, आदर्श, मर्यादा, संस्कृति एवं समाज से संबंधित उच्चतम मानव मूल्यों का समावेश है।

भारतीय संस्कृति के सनातन सिद्धांतों को व्यावहारिकता के आदर्शों में प्रस्तुत करने वाला यह अद्वितीय ग्रंथ है। शोधार्थी ने इस महाकाव्य को आधार बनाकर ही अपने इस अध्ययन में मानव मूल्यों की विवेचना प्रस्तुत की है। इस विशिष्ट शोध को प्रस्तुत करने के लिए इसे कुल सात अध्यायों में वर्गीकृत किया गया है।

शोध का प्रथम अध्याय **'विषय प्रवेश'** है। इसके अंतर्गत शोध विषय का परिचय, शोध की आवश्यकता, उद्देश्य एवं इससे संबंधित उपयोगी साहित्यों का विवेचन किया गया है। भारत की ऋषि-जीवनपद्धति में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के रूप में मानव जीवन के चार परम पुरुषार्थ कहे गए हैं।

इन पुरुषार्थों पर चलने के लिए जो नीति-मर्यादा आवश्यक है, उसका वाल्मीकि रामायण में उत्कृष्ट उदाहरण मौजूद है। मानव का जीवन स्वतंत्र होते हुए भी परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्वसमाज से संबंधित है—अतः उसके आचरण एवं व्यवहार की मर्यादाएँ व मूल्य की व्यापकता व्यक्तिगत और सार्वभौमिक—दोनों दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

जीवन की मर्यादाएँ, कर्त्तव्य आदि के निर्धारण में मानव मूल्यों की भूमिका ही सर्वाधिक सहयोगी बनती है; क्योंकि मानव मूल्यों को धारण करने पर ही मनुष्य जीवन मनुष्यता और मानवता के आदर्श को चरितार्थ कर पाता है। मानव मूल्यों के अभाव में मानव जीवन पशुता एवं निकृष्टता-पतन की ओर अग्रसर हो जाता है।

द्वितीय अध्याय का प्रस्तुतीकरण दो भागों में वर्गीकृत है—

(i) वाल्मीकि रामायण एवं वाल्मीकि का जीवन परिचय तथा

(ii) रामायण का रचनाकाल।

भारतीय इतिहास के आदिकाव्य के रूप में प्रतिष्ठित वाल्मीकि रामायण को इतिहास ग्रंथ भी कहा जाता है। रामायण के आदर्श चरित्रों के माध्यम से मानव जीवन की मर्यादाओं एवं मानदंडों का इसमें सुंदर प्रस्तुतीकरण हुआ है।

इस महाकाव्य में चौबीस सौ श्लोकों को सात प्रमुख कांडों एवं पाँच सौ सर्गों में विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है। इसके रचनाकार वाल्मीकि ऋषि के संदर्भ में कथानक है कि वे रत्नाकर से 'राम' नाम जपते हुए ऋषि-पद पर आसीन हुए थे। आदिकवि के रूप में उनकी प्रतिष्ठा व उनके द्वारा रचित रामायण भारतीय संस्कृति की कालजयी विरासत है।

शोध का तृतीय अध्याय है—**वाल्मीकि रामायण में मानव मूल्य का अर्थ, परिभाषा एवं प्रकार।** इसके अंतर्गत मूल्य का शाब्दिक अर्थ, अवधारणा, परिभाषा एवं मूल्य के संबंध में विभिन्न चिंतकों के विचार प्रस्तुत किए गए हैं। इसके साथ ही मानव मूल्यों का स्वरूप एवं रामायण के परिप्रेक्ष्य में इनके प्रकारों का विस्तृत विवेचन है। मूल्य शब्द अँगरेजी भाषा के वैल्यू (Value) शब्द का हिंदी रूपांतरण है।

वैल्यू की उत्पत्ति लैटिन भाषा के वैलियर शब्द से हुई है, जिसका तात्पर्य—योग्यता, उपयोगिता और महत्त्व से है। अतः मूल्य का अर्थ है ऐसे गुण या विशेषताएँ, जिनसे मानव जीवन के महत्त्व की

उपयोगिता प्रकट होती हो। मूल्यों के द्वारा ही सभी प्रकार की वस्तुओं, विचारों, भावनाओं, क्रिया-कलापों, गुणों, पदार्थों, व्यक्तियों, समूहों, साधनों आदि का मूल्यांकन किया जाता है। परिभाषा की दृष्टि से मूल्य वह चारित्रिक विशेषता है, जो मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और सौंदर्य-बोध की भावना के लिए महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।

मनुष्य जीवन में व्यक्ति के स्वयं के प्रति व परिवार, समाज व राष्ट्र के लिए उचित कर्त्तव्यों को स्थापित करने वाले मानदंडों को मानव मूल्य कहा जाता है। मानव जीवन में सुख-शांति एवं आनंद की प्राप्ति के लिए मार्गदर्शन प्रदान करने वाली आधारभूत संरचना को मानव मूल्य के रूप में देखा जाता है।

ये मानव जीवन की उत्तरोत्तर प्रगति के सामान्य नियम और मानक हैं। वाल्मीकि रामायण में इन मूल्यों को मानव धर्म के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें मानव धर्म को ही व्यक्तिगत, सामाजिक व राष्ट्रीय उत्कर्ष का आधार बताया गया है। धर्म शब्द का प्रयोग गुण, कर्त्तव्य, नियम आदि के संदर्भ में किया गया है।

जैसे—धैर्य, एकाग्रता, करुणा, सहानुभूति, समानता, प्रेम, आज्ञापालन, मित्रता, विश्वास, नीति, सौहार्द, न्याय, राष्ट्रभक्ति, सहनशीलता, आदि गुणों को मानव धर्म के रूप में निरूपित किया गया है। विद्वानों द्वारा मानव मूल्यों को अनेक प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है, जिसमें से प्रमुख हैं—व्यक्तिगत, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं राष्ट्रीय मूल्य। वाल्मीकि रामायण में ऐसे सभी प्रकारों के मानवीय मूल्यों का व्यापक निरूपण किया गया है।

चतुर्थ अध्याय '**वाल्मीकि रामायण में सामाजिक एवं आर्थिक मूल्य**' है। इसके अंतर्गत व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक मूल्यों की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की गई है। सामाजिक मूल्य में ही व्यक्तिगत एवं पारिवारिक मूल्य समाहित हो जाते हैं।

व्यक्तिगत मूल्यों में जिन मूल्यों का वर्णन है। वे हैं—सत्य एवं ईमानदारी, प्रेम, अहिंसा, साहस, धैर्य, सहनशीलता, उत्साह, आत्मसंयम, आत्मनिरीक्षण, आत्मविश्लेषण, चित्त की एकाग्रता, करुणा, सहानुभूति, परोपकार, स्वच्छता, मधुरवाणी, कार्यकुशलता, ब्रह्मचर्य, पवित्रता, शिक्षा, आत्मानुभूति, संकल्प, त्याग, सेवा आदि।

इसी प्रकार पारिवारिक मूल्यों के अंतर्गत—विश्वास, एकपत्नीव्रत, पतिव्रत, कर्त्तव्यपरायणता, सहयोग, आज्ञाकारिता, सेवाभावी, भ्रातृप्रेम, एकता की भावना आदि का विवेचन है। अध्याय के अंतिम भाग में आर्थिक मूल्यों के रूप में कृषि, व्यवसाय, पशुपालन, वाणिज्य, कर, दान, वैभवता, संपन्नता, समृद्धि आदि गुणों की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत हुई है।

अध्ययन का पंचम अध्याय है—'**वाल्मीकि रामायण में राजनीतिक एवं धार्मिक मूल्य।**' राजनीतिक मूल्यों के अंतर्गत जनहित, शासकत्व, नीति, राष्ट्रभक्ति, त्याग, बलिदान, महत्त्वाकांक्षा, न्याय, निष्पक्षता, मधुभाषिता, नीतिज्ञता, जागरूकता आदि विशेषताओं की विस्तृत विवेचना की गई है। अगले क्रम में मानव जीवन के विभिन्न धार्मिक मूल्यों की विवेचना है। प्रमुख धार्मिक मूल्यों; जैसे—उपासना, स्तुति, प्रार्थना, संध्योपासना, यज्ञ, आतिथ्य-सत्कार की मानव मूल्यों के रूप में विस्तृत व्याख्या की गई है।

षष्ठ अध्याय है—'**वाल्मीकि रामायण में सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय मूल्य।**' इसके अंतर्गत भारतीय समाज एवं संस्कृति के आधारभूत

सांस्कृतिक मूल्यों की विस्तृत विवेचना की गई है। इन सांस्कृतिक मूल्यों में पर्व-त्योहार, व्रत-उपवास, खान-पान, वेशभूषा आदि से लेकर प्रमुख रूप से मानव जीवन में संपन्न कराए जाने वाले षोडश संस्कारों का वर्णन आता है।

इस शोध में गर्भाधान, उपनयन, विवाह, अंत्येष्टि आदि संस्कारों की महत्ता एवं स्वरूप को विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ-साथ राष्ट्रीय मूल्यों में एकता, अखंडता, अतीत के प्रति गौरव, राष्ट्रभक्ति, प्रजातंत्र आदि के उच्चतम आदर्शों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

अध्ययन का अंतिम सोपान है—**मानव मूल्यों की वर्तमान में प्रासंगिकता**। इस सोपान में शोधार्थी ने मानव जीवन के सभी आयामों में उत्पन्न मूल्य संकट को रेखांकित करते हुए वाल्मीकि रामायण के परिप्रेक्ष्य में इस संकट के समाधान व वर्तमान की मूल्यहीनता से ग्रस्त मानव समाज के समक्ष रामायण के आदर्शों को प्रस्तुत किया है। वस्तुत: वाल्मीकि रामायण में समाहित मानव मूल्य किसी देश-काल की सीमा में आवद्ध नहीं हैं, अपितु सार्वभौमिक रूप में वे अखिल मानवता के लिए वर्तमान में भी अत्यंत उपयोगी एवं प्रासंगिक हैं। जीवन में मानव मूल्यों की प्रतिष्ठापना से व्यक्तिगत एवं सामूहिक व वैश्विक जीवन के समस्त संकटों एवं समस्याओं का निवारण स्वत: हो जाता है।

अध्ययन के अंतिम भाग को **'उपसंहार'** के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें सभी अध्यायों का सार-संक्षेप प्रस्तुत करते हुए इस शोध अध्ययन के महत्त्व एवं उपयोगिता को भली भाँति प्रकट किया गया है।

शोध निष्कर्ष को प्रस्तुत करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि जिस प्रकार जीवन के अस्तित्व के लिए प्राण तथा प्राण को बनाए रखने के लिए भोजन आवश्यक होता है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य जीवन की सार्थकता के लिए मनुष्यत्व और मनुष्यत्व की प्राप्ति के लिए मानव मूल्यों की महती आवश्यकता होती है। ❑

पतिव्रता राधिका कौशिकी का विवाह रुग्ण पति से हुआ, परंतु इससे उसे जरा भी शोक नहीं होता था, वरन उसे लगता था कि ईश्वर ने उसे सेवावृत्ति के विकास का अवसर प्रदान किया है। एक बार वह अँधेरी रात्रि में अपने पति को पीठ पर लादकर ले जा रही थी।

रास्ते में अंधकार के कारण पति का पैर तपस्यारत माण्डव्य ऋषि से लग गया। सामान्य भूल को ऋषि ने जान-बूझकर की उद्दंडता समझकर शाप दिया—"जिस व्यक्ति ने यह धृष्टता की है, वह सूर्योदय होते ही मृत्यु को प्राप्त होगा।" कौशिकी ने यह जानकर स्पष्टीकरण देने का प्रयास किया, किंतु उससे कोई लाभ न हुआ।

अंतत: कौशिकी बोली—"मैं निरपराध वैधव्य दंड नहीं स्वीकारूँगी, यदि सूर्योदय के साथ पति की मृत्यु तय है तो वह सूर्योदय ही नहीं होगा।" सूर्यदेव पतिव्रता की शक्ति की अवहेलना नहीं कर सकते थे। सूर्योदय न होने पर हाहाकार मच गया।

ऋषि माण्डव्य को अपनी भूल का भान हुआ, पर अपना शाप वापस लेने की सामर्थ्य उनमें नहीं थी। ऐसे में सती अनसूया वहाँ प्रकट हुईं और बोलीं—"कौशिकी बहन! सूर्योदय होने दो, तुम्हारे पति को मैं पुनर्जीवित कर दूँगी।" ऐसा ही हुआ। दोनों देवियों के तेज का प्रमाण पाकर संसार धन्य-धन्य कर उठा।

युगगीता – 307

मूढ़ भाव है तामस भाव

(श्रीमद्भगवद्गीता के मोक्ष संन्यास योग नामक अठारहवें अध्याय की बाईसवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के अठारवें अध्याय के इक्कीसवें श्लोक की व्याख्या एवं विवेचना इससे पूर्व की किस्त में प्रस्तुत की गई थी। इस श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण राजसी ज्ञान के विषय में बताते हुए कहते हैं कि जिस ज्ञान के द्वारा मनुष्य संपूर्ण प्राणियों में अलग-अलग रूप से अनेक भावों को अलग-अलग समझता है, उस ज्ञान को तुम राजस ज्ञान समझो। सात्त्विक ज्ञान, जिसके विषय में इससे पूर्व की किस्त में बताया गया था—उसके प्राप्त होने पर एक शाश्वत सत्य की अनुभूति हो जाती है। तब मान-अपमान, निंदा-प्रशंसा, कृपा-कोप, नाला-गंगाजल सबमें एक शुद्ध, चैतन्य परमात्मा को देख पाने का ज्ञान विकसित होता है, जिसे भगवान ने ऐसा कहकर के समझाया था कि विनाशशील में अविनाशी को, विभक्त में अविभक्त को देख पाने का भाव एवं ज्ञान जन्म लेते हैं।

राजसिक ज्ञान में इसके विपरीत भाव जन्म लेता है। सात्त्विक ज्ञान में जगत् के मिथ्या होने का भाव होता है तो राजस ज्ञान में जगत् ही सत्य लगने लगता है। इस ज्ञान के कारण व्यक्ति लोगों को, व्यक्तियों को पृथक-पृथक देखता है, जानता है और उसी के आधार पर लोगों से व्यवहार करता है। इसी के कारण उसमें भेद-दृष्टि विकसित हो जाती है।]

यह कह लेने के बाद श्रीभगवान अर्जुन को तामस ज्ञान के विषय में बताते हुए कहते हैं कि

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम्॥ 22॥

शब्दविग्रह—यत्, तु, कृत्स्नवत्, एकस्मिन्, कार्ये, सक्तम्, अहैतुकम्, अतत्त्वार्थवत्, अल्पम्, च, तत्, तामसम्, उदाहृतम्॥

शब्दार्थ—परंतु (**तु**), जो ज्ञान (**यत्**), एक (**एकस्मिन्**), कार्य रूप शरीर में (ही) (**कार्ये**), संपूर्ण के सदृश (**कृत्स्नवत्**), आसक्त है (**सक्तम्**), तथा (जो) (**च**), बिना युक्तिवाला (**अहैतुकम्**), तात्त्विक अर्थ से रहित (और) (**अतत्त्वार्थवत्**), तुच्छ है (**अल्पम्**), वह (**तत्**), तामस (**तामसम्**), कहा गया है (**उदाहृतम्**)।

अर्थात जो ज्ञान या जिस ज्ञान के द्वारा मनुष्य एक कार्यरूप शरीर में ही संपूर्ण के सदृश आसक्त रहता है तथा जो युक्तिरहित, वास्तविक ज्ञान से रहित और तुच्छ है—वह तामस कहा गया है।

चूँकि तम भाव, मूढ़ता का भाव माना गया है, इसलिए ऐसा व्यक्ति उत्पन्न और नष्ट होने वाले इस जड़ शरीर को ही अपना स्वरूप मानकर बैठ जाता है।

यह वस्तुतः ज्ञान न होकर अज्ञान है, इसीलिए श्रीभगवान ने इसे ज्ञान शब्द से नहीं पुकारा है। श्रीभगवान यहाँ कहते हैं कि तामस भाव वाला

मनुष्य एक ही शरीर में अपनी संपूर्ण आसक्ति को लगाए रहता है और इस जन्म लेने वाले, नष्ट होने वाले शरीर को ही अपना स्वरूप मानकर बैठ जाता है।

श्रीभगवान ने सोलहवें अध्याय में इंगित किया है कि ऐसी मान्यता मूढ़ता के कारण ही होती है (**इत्यज्ञान विमोहिता:**—*16/15*) ऐसा व्यक्ति भूल जाता है कि हमारे जीवन की कीमत इस मरणधर्मा शरीर के कारण नहीं, वरन इसमें प्रवाहित हो रही प्राण-चेतना के कारण है।

जिस दिन प्राण-चेतना, इस शरीर का साथ छोड़ देती है—उस दिन हम प्राणी नहीं रह जाते हैं, वरन लाश बन जाते हैं। तब वही शरीर जिसकी कामना-वासना, तृष्णा की पूर्ति के लिए इनसान कुकृत्य, कुकर्म, पाप करने में संकोच नहीं करता था, उसी शरीर को जलाने के, नष्ट करने के उपाय करने पड़ते हैं।

वह इस वास्तविक ज्ञान (**अतत्त्वार्थवत्**) से रहित होता है कि वस्तुत: शरीर और आत्मा अलग-अलग हैं। इसलिए भगवान कहते हैं कि ऐसे भाव वाला मनुष्य युक्ति से रहित और तुच्छ होता है।

यह एक तरह का मूढ़ भाव है, इसलिए भगवान ने इस श्लोक में ज्ञान शब्द का प्रयोग न करते हुए 'यत्' और 'तत्' पद से काम चलाया है। श्रीमद्भागवत में भी तामस ज्ञान का उल्लेख करते हुए उसे पशुतुल्य बुद्धि कहकर के पुकारा है।

श्री शुकदेव उसमें कहते हैं कि

त्वं तु राजन् मरिष्येति पशुबुद्धिमिमां जहि।
न जात: प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं न नङ्क्ष्यसि॥

अर्थात श्री शुकदेव जी बोले—"हे राजन्! अब तुम यह पशु-बुद्धि छोड़ दो कि मैं मृत्यु को प्राप्त होऊँगा। जैसे शरीर पहले नहीं था, बाद में पैदा हुआ और फिर मर जाएगा। ऐसे ही तुम पहले नहीं थे, बाद में पैदा हुए और फिर मर जाओगे—ऐसी बात नहीं है।" श्रीभगवान इस मूढ़ता के भाव को तामस भाव कहकर के पुकारते हैं। (क्रमश:)

श्रद्धा अर्थात सद्भाव, प्रज्ञा अर्थात सद्ज्ञान एवं निष्ठा अर्थात सत्कर्म। तीनों का समुचित स्वरूप ही व्यक्तित्व का निर्माण करता है। श्रद्धा अंत:करण से प्रस्फुटित होने वाले आदर्शों के प्रति प्रेम है। इस गंगोत्तरी से निस्सृत होने वाली पवित्र धारा ही सद्ज्ञान और सत्कर्म से मिलकर पतितपावनी गंगा का स्वरूप ले लेती है। इन तीनों का विकास-उत्थान ही मानव को महामानव बनाता है तथा इस क्षेत्र का पतन ही उसे निकृष्ट स्तर का जीवनयापन करने को विवश करता है।

—परमपूज्य गुरुदेव

विश्वविद्यालय परिसर से –246

मानवता के भविष्य को निर्धारित करता विश्वविद्यालय

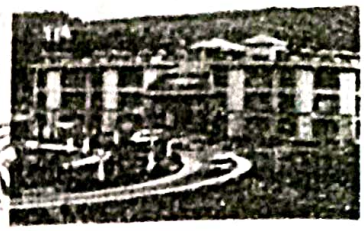

देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने एक ऐतिहासिक पहल करते हुए उस विषय पर वैश्विक विमर्श का शुभारंभ किया, जिसकी ओर आज पूरा विश्व उत्सुकता से देख रहा है—आधुनिक तकनीक Artificial Intelligence (AI) और सनातन अध्यात्म का संगम। "Faith and Future: Integrating AI with Spirituality" विषय पर आयोजित इस अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन का उद्घाटन मृत्युंजय सभागार में हुआ।

यह आयोजन देव संस्कृति विश्वविद्यालय और Future of Life Institute के संयुक्त तत्त्वावधान तथा Inter-Parliamentary Union के ज्ञान-सहयोग से संपन्न हुआ। भव्य उद्घाटन सत्र में मुख्य अतिथि के रूप में माननीय लोकसभा अध्यक्ष श्री ओम बिरला जी और विशिष्ट अतिथि के रूप में उत्तराखंड के माननीय मुख्यमंत्री श्री पुष्कर सिंह धामी जी उपस्थित रहे।

इस अवसर पर देश-विदेश से आए वैज्ञानिकों, तकनीकी विशेषज्ञों, नीति-निर्माताओं और आध्यात्मिक प्रतिनिधियों की गरिमामयी उपस्थिति ने इसे वास्तव में अंतरराष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया। कार्यक्रम में रिसर्च एंड इन्फ़ॉर्मेशन सिस्टम फॉर डिवेलपिंग कंट्रीज (RIS) के महानिदेशक डॉ० सचिन चतुर्वेदी, हरिद्वार अवधूत मंडल के प्रमुख स्वामी रूपेंद्र प्रकाश, इलेक्ट्रॉनिक एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय के सचिव और इंडिया एआई मिशन के मुख्य कार्यकारी अधिकारी डॉ० अभिषेक सिंह, बर्कले विश्वविद्यालय के प्रो० स्टुअर्ट रसेल, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रो० रॉबर्ट ट्रेगर, Skype के सह-संस्थापक श्री जॉन टालिन, तथा अमेरिका की Encode संस्था की सुश्री स्नेहा रेवणूर सहित 10 से अधिक देशों के प्रतिनिधियों ने अपने विचार साझा किए।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने अध्यक्षीय संबोधन में कहा कि AI केवल तकनीक नहीं है, बल्कि यह मानवता के भविष्य की दिशा तय करने वाला माध्यम है। ऐसे में इसकी प्रगति को अध्यात्म और मानवीय मूल्यों के साथ जोड़ना समय की आवश्यकता है। उन्होंने पूज्य गुरुदेव की वैज्ञानिक, आध्यात्मिक दृष्टि का उल्लेख करते हुए कहा कि यह संगोष्ठी नवयुग के मूल्य-आधारित समाज की स्थापना की दिशा में मील का पत्थर बनेगी।

माननीय लोकसभा अध्यक्ष ने कहा कि भारत की प्राचीन आध्यात्मिक परंपरा और आधुनिक तकनीक का समन्वय विश्व को एक नई दिशा दे सकता है। उन्होंने इस पहल को अद्वितीय बताते हुए कहा कि इस प्रकार के आयोजन भारत की 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना को साकार करते हैं और विश्व समुदाय के सामने नई संभावनाएँ प्रस्तुत करते हैं।

उत्तराखंड के मुख्यमंत्री ने कहा कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय जैसे संस्थान राज्य की पहचान को वैश्विक स्तर पर नई ऊँचाइयों तक पहुँचा रहे हैं। उन्होंने कहा कि AI और अध्यात्म का संगम ही वह मार्ग है, जो तकनीकी विकास को मानवीय संवेदनाओं के अनुरूप बनाकर आने वाली पीढ़ियों के लिए एक उज्ज्वल भविष्य सुनिश्चित करेगा।

इस अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन का उद्देश्य AI से जुड़े अवसरों और चुनौतियों को वैश्विक दृष्टिकोण से समझना तथा भारतीय अध्यात्म की 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना को आधार बनाकर इसके नैतिक एवं मानवीय दिशा-निर्देशन की रूपरेखा को तैयार करना है। संगोष्ठी के दौरान विद्यार्थियों और शोधकर्त्ताओं को भी सम्मानित किया गया, जिससे युवा प्रतिभाओं को प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला।

यह आयोजन न केवल भारत के लिए गर्व का विषय है, बल्कि इसने विश्व को यह संदेश दिया है कि प्रौद्योगिकी और अध्यात्म का संगम ही मानवता के सतत, न्यायपूर्ण और शांतिपूर्ण भविष्य की कुंजी है। इसका समापन राष्ट्रगान और दीप प्रज्वलन के साथ हुआ। इसके उपरांत आचार्य लोकेश मुनि जी ने आस्था और कृत्रिम बुद्धिमत्ता विषय पर अपने विचार रखते हुए बताया कि तकनीक तभी सार्थक है, जब वह जीवन मूल्यों, नैतिकता और मानवता की भलाई से जुड़ी हो।

समारोह के मुख्य अतिथि, उत्तराखंड के माननीय राज्यपाल लेफ्टिनेंट जनरल गुरमीत सिंह (सेवानिवृत्त) ने अपने उद्बोधन में भारत की भूमिका पर बल देते हुए कहा कि भारत को कृत्रिम बुद्धिमत्ता के भविष्य को मूल्य आधारित, लोकतांत्रिक और मानवीय दृष्टिकोण से दिशा देनी होगी। इस अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने अध्यक्षीय उद्बोधन दिया।

उन्होंने कहा कि तकनीकी प्रगति को आध्यात्मिक मूल्यों, नैतिक उत्तरदायित्व और मानवता के सामूहिक उत्थान के दृष्टिकोण से जोड़ना समय की अनिवार्य आवश्यकता है। सम्मेलन के दौरान कई अंतरराष्ट्रीय विशेषज्ञों ने भी अपने विचार रखे। श्री अभिषेक सिंह (सचिव, इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार एवं सीईओ India AI Mission) ने मुख्य वक्तव्य प्रस्तुत किया।

विशिष्ट अतिथियों में सुश्री हिमेना अल्वारेज़, प्रो0 स्टुअर्ट रसेल, प्रो0 रॉबर्ट ट्रैगर, सुश्री स्नेहा रेवनूर और श्री जान टालिन ने कृत्रिम बुद्धिमत्ता के सामाजिक, नैतिक और वैश्विक प्रभावों पर अपने दृष्टिकोण साझा किए।

समारोह में विशिष्ट पुरस्कार भी प्रदान किए गए, जिनके माध्यम से इस क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान देने वाले व्यक्तियों को सम्मानित किया गया। सभी अतिथियों का अभिनंदन विश्वविद्यालय की परंपरा के अनुसार स्मृतिचिह्न और पवित्र गंगाजल भेंट कर किया गया।

कार्यक्रम के अंत में फ्यूचर फॉर लाइफ इन्स्टीट्यूट के श्री विलियम जोन्स ने सभी को धन्यवाद ज्ञापित किया। समारोह का समापन राष्ट्रीय गान के साथ हुआ, जिसने दिनभर के गहन विमर्श को एकता, संकल्प और उज्ज्वल भविष्य की भावना के साथ पूर्णता प्रदान की।

विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय में 'वाटर विजन 2047' के अंतर्गत भारतीय नदी परिषद् एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्त्वावधान में 'हिमालय पर्यावरण संवाद' का सफल आयोजन हुआ। यह संवाद कार्यक्रम नदियों के संरक्षण, पर्यावरणीय संतुलन एवं जलवायु-परिवर्तन जैसे ज्वलंत मुद्दों पर विमर्श का एक सशक्त मंच सिद्ध हुआ।

कार्यक्रम का शुभारंभ भारतीय नदी परिषद् के अध्यक्ष श्री रमनकांत जी द्वारा उद्घाटन वक्तव्य से हुआ, जिसमें उन्होंने नदियों के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए भविष्य की पीढ़ियों के लिए जल एवं पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता पर बल दिया।

इसके पश्चात श्री मनु गौड़ जी, सदस्य-रणनीतिक सलाहकार समिति, माननीय मुख्यमंत्री उत्तराखंड एवं सलाहकार, भारतीय नदी परिषद् ने विशिष्ट अतिथि उद्‌बोधन प्रस्तुत करते हुए हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र को सुरक्षित रखने हेतु सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता बताई।

अध्यक्षीय उद्‌बोधन में प्रतिकुलपति जी ने छात्रों, शोधकर्त्ताओं और समाज को पर्यावरणीय आंदोलनों में सक्रिय भागीदारी के लिए प्रेरित किया और कहा कि नदियाँ केवल जल का स्रोत नहीं, बल्कि हमारी संस्कृति, अध्यात्म और जीवनधारा की संवाहक हैं। कार्यक्रम में राष्ट्रीय हरित अधिकरण (NGT) के माननीय न्यायाधीश डॉ० अफरोज अहमद जी ने पर्यावरण एवं जलवायु-परिवर्तन के कानूनी और सामाजिक पहलुओं पर प्रकाश डाला तथा न्यायिक दृष्टिकोण से प्रकृति संरक्षण को सशक्त बनाने के उदाहरण साझा किए।

मुख्य अतिथि के रूप में भारत सरकार के केंद्रीय पर्यावरण, वन एवं जलवायु-परिवर्तन मंत्री श्री भूपेंद्र यादव जी ने जल-संरक्षण की चुनौतियों और अवसरों पर विस्तृत चर्चा करते हुए कहा कि नदियों के सतत विकास और जलवायु-संकट से निपटने के लिए वैज्ञानिक शोध, सामाजिक सहभागिता और जनजागरण, तीनों का समन्वय अत्यंत आवश्यक है।

कार्यक्रम के अंतर्गत विभिन्न विषयों पर आयोजित प्रतियोगिताओं के विजेताओं को सम्मानित किया गया तथा समापन सत्र में विमोचन एवं स्मृतिचिह्न वितरण कर सभी अतिथियों का सम्मान किया गया।

'हिमालय पर्यावरण संवाद' ने न केवल पर्यावरणीय चेतना को गहरा किया, बल्कि युवा पीढ़ी और नीति-निर्माताओं के बीच संवाद का एक जीवंत मंच प्रस्तुत किया और यह संदेश दिया कि जल और पर्यावरण का संरक्षण केवल विकल्प नहीं, बल्कि भविष्य की आवश्यकता है।

विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय में वैश्विक समस्याएँ—सनातन समाधान विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी का भव्य आयोजन किया गया। इस संगोष्ठी का उद्देश्य आधुनिक विश्व की जटिल समस्याओं का समाधान भारतीय सनातन परंपरा और समग्र जीवनदर्शन के दृष्टिकोण से खोजने पर ध्यान केंद्रित करना था।

संगोष्ठी का शुभारंभ बीएपीएस स्वामीनारायण शोध संस्थान के अध्यक्ष महामहोपाध्याय भद्रेशदास स्वामी, कुलपति श्री शरद पारधी, प्रतिकुलपति, उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो० दिनेशचंद्र शास्त्री तथा शोभित विश्वविद्यालय के कुलाधिपति कुंवर शेखर विजेंद्र ने संयुक्त रूप से दीप प्रज्वलन कर किया।

संगोष्ठी की अध्यक्षता करते हुए प्रतिकुलपति जी ने कहा कि भारत वह पुण्यभूमि है, जहाँ **वसुधैव कुटुम्बकम्** और **सर्वे भवन्तु सुखिनः** जैसे सार्वभौमिक कल्याणकारी विचार उत्पन्न हुए। उन्होंने आगे कहा कि आज जब पूरा विश्व अनेक जटिल समस्याओं का सामना कर रहा है तब उनके समाधान भारत की सनातन परंपरा और समग्र जीवनदर्शन में निहित हैं। यह परंपरा व्यक्ति को आत्मकल्याण से लोक-मंगल की ओर उन्मुख करती है।

मुख्य अतिथि महामहोपाध्याय भद्रेशदास स्वामी ने कहा कि वर्तमान समस्याएँ वे परिस्थितियाँ हैं, जिनका समाधान हमारे देश की सनातन संस्कृति और आर्षग्रंथों में उपलब्ध है। उन्होंने शिक्षा, शोध और अध्यात्म को मानव जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ बताते हुए कहा कि जब ये तीनों

तत्त्व साथ में हों, तो वह भूमि स्वत: ही प्रगतिशील और उन्नत बन जाती है।

संगोष्ठी के दौरान मंच पर उपस्थित विशिष्ट अतिथियों को गायत्री महामंत्र लिखित चादर, युग साहित्य और विश्वविद्यालय का प्रतीकचिह्न भेंट कर सम्मानित किया। दिन भर चलने वाली इस संगोष्ठी में देशभर के 20 से अधिक विश्वविद्यालयों के शोधार्थियों ने अपने शोधपत्र प्रस्तुत किए। शोधपत्रों में वैश्विक चुनौतियों जैसे पर्यावरण संकट, सामाजिक असमानता, मानसिक स्वास्थ्य, तकनीकी बदलाव और सांस्कृतिक क्षरण पर विशेष ध्यान दिया गया और उनके समाधान में सनातन दृष्टिकोण की भूमिका पर चर्चा हुई।

कार्यक्रम में उत्तराखंड राजभवन के अनुभाग अधिकारी, शांतिकुंज व्यवस्थापक श्री योगेंद्र गिरि, कुलसचिव, संकायाध्यक्ष, विभागाध्यक्ष, शिक्षकगण, शोधार्थी एवं स्थानीय नागरिक बड़ी संख्या में उपस्थित रहे। संगोष्ठी के समापन अवसर पर विद्यार्थियों को उत्कृष्ट शोधपत्र और सांस्कृतिक प्रस्तुतियों के लिए पुरस्कार प्रदान किए गए। कार्यक्रम का समापन भगवान श्रीगणेश की आरती एवं आभार ज्ञापन के साथ हुआ, जिससे यह सम्मेलन न केवल सफल, बल्कि प्रेरणादायक भी साबित हुआ।

विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग द्वारा हिंदी दिवस के उपलक्ष्य में दो दिवसीय विशेष कार्यक्रम का भव्य आयोजन किया गया। इस आयोजन में विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने अपार उत्साह और समर्पण के साथ भाग लेकर हिंदी भाषा की गरिमा और महत्ता को अभिव्यक्त किया। दो दिवसीय कार्यक्रम के अंतर्गत वाद-विवाद प्रतियोगिता, काव्यपाठ, निबंध लेखन, भाषण, प्रश्नोत्तरी तथा सांस्कृतिक प्रस्तुतियों का आयोजन किया गया।

इन प्रतियोगिताओं में विद्यार्थियों ने अपनी प्रतिभा का उत्कृष्ट प्रदर्शन किया और हिंदी की समृद्ध परंपरा तथा अभिव्यक्ति की क्षमता को उजागर किया। कार्यक्रम के समापन सत्र में प्रतिकुलपति जी ने सभी प्रतिभागियों को शुभकामनाएँ दीं और उन्हें प्रमाणपत्र प्रदान किए।

अपने मार्गदर्शन में उन्होंने कहा कि हिंदी केवल एक भाषा नहीं, बल्कि यह हमारे राष्ट्र की आत्मा है, जो समाज को एक सूत्र में पिरोती है। यह विचारों और संस्कारों की धरोहर है, जिसका संरक्षण और संवर्द्धन हम सबकी सामूहिक जिम्मेदारी है।

उन्होंने विद्यार्थियों से आह्वान किया कि वे हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु सदैव प्रयत्नशील रहें और इसके माध्यम से संस्कृति, साहित्य एवं मूल्य-आधारित जीवन को आगे बढ़ाएँ। इस अवसर पर हिंदी विभाग के प्राध्यापकों एवं अनेक विद्यार्थियों की सक्रिय उपस्थिति रही।

विगत दिनों श्री नवीन माहेश्वरी जी, निदेशक, एलेन, कोटा, ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय का दौरा किया। इस अवसर पर उनका प्रतिकुलपति जी से हार्दिक संवाद हुआ। इस बैठक के दौरान शिक्षा के परिवर्तनकारी प्रभाव और युवाओं के चरित्र निर्माण में मूल्यों एवं नैतिकता की भूमिका पर विस्तृत चर्चा हुई।

प्रतिकुलपति जी ने कहा कि शिक्षा केवल ज्ञान-अर्जन का साधन नहीं है, बल्कि यह एक मार्गदर्शक शक्ति है, जो व्यक्तित्व का पोषण करती है और समाज में नेतृत्व करने के लिए तैयार करती है। श्री माहेश्वरी जी ने विश्वविद्यालय की आध्यात्मिक और सांस्कृतिक पहलों की गहरी सराहना की और कहा कि पूज्य गुरुदेव की दूरदर्शिता के अनुसार यह विश्वविद्यालय एक समग्र शैक्षिक

ढाँचा तैयार कर रहा है, जो छात्रों में उत्कृष्टता और जिम्मेदारी दोनों का विकास करता है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा हाल ही में प्रो0 जाना कोची, चार्ल्स विश्वविद्यालय, चेक गणराज्य के बीच शैक्षणिक और सांस्कृतिक सहयोग को बढ़ावा देने हेतु एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए। यह साझेदारी वैदिक ज्ञान, आयुर्वेद, योग, मनोविज्ञान, कल्याण एवं स्वास्थ्य शिक्षा के क्षेत्र में संयुक्त पहलों के साथ-साथ, सामुदायिक सहभागिता और समग्र स्वास्थ्य अनुसंधान में सहयोगी परियोजनाओं को बढ़ावा देने की दिशा में कार्य करेगी।

इस अनुबंध के माध्यम से नवाचारी कार्यक्रमों का मार्ग प्रशस्त होगा, जिन्हें AI-समर्थित प्लेटफॉर्म द्वारा संचालित किया जाएगा। इसके अलावा, समग्र स्वास्थ्य और कल्याण केंद्रों की स्थापना के माध्यम से अनुसंधान और प्रशिक्षण के अवसर बढ़ेंगे, जो भविष्य के लिए बेहतर सामाजिक और शैक्षणिक संरचना तैयार करेंगे। इस सहयोग के जरिए दोनों संस्थान समग्र शिक्षा, वैश्विक कल्याण और सतत सामाजिक विकास को बढ़ावा देने के अपने साझा संकल्प की पुनः पुष्टि करते हैं। ❑

मधुवर्त नामक वैश्य राजा समुद्रदत्त के यहाँ नौकरी करता था। राजा उसके कार्य से प्रसन्न थे, उसके एवज में उसे जितना मिलता, उससे उसका निर्वाह भली भाँति हो जाया करता था। एक दिन वह किसी कार्य से दूसरे नगर गया। मार्ग में एक जंगल पड़ा। जंगल से गुजरते समय, उसे आवाज आई—'सात घड़ा धन लोगे।'

मधुवर्त के मन में लोभ जगा। उसने 'हाँ' कर दी। घर पहुँचने पर देखा कि सात घड़े रखे हैं। उनमें से छह में स्वर्णमुद्राएँ भरी पड़ी थीं। एक खाली था। बस! मधुवर्त का मन चिंता से भर उठा। वह घर-परिवार का पेट काटकर उस खाली घड़े को भरने की जुगत में लग गया। पहले कार्य से प्रसन्नचित्त आने वाला मधुवर्त, अब कार्य पर चिंतातुर जाता।

उसे चिंतामग्न देख, राजा समुद्रदत्त ने हँसकर पूछा—"मधुवर्त! परेशान क्यों हो? कहीं तुम्हें यक्ष के सात घड़े तो नहीं मिल गए।" मधुवर्त ने हामी भरी व उत्सुकता से राजा की ओर देखा कि उन्हें सत्य कैसे पता चला।

राजा बोले—"वह यक्ष और कोई नहीं, तुम्हारे मन में पनप रहा लोभ ही है। वह कइयों को इसी तरह परेशानी दे चुका है। उससे मुक्त होना है तो घड़े जंगल में रख आओ।" मधुवर्त ने ऐसा ही किया, उसके सुख-शांति के दिन पुनः लौट आए।

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

उपासना-साधना-आराधना

(गतांक से आगे)

परमवंदनीया माताजी के उद्बोधनों में वैविध्य एवं वैचारिक प्रगाढ़ता—दोनों, एक साथ देखने को मिलते हैं। वे विषय, जो न केवल गायत्री परिजनों के लिए अपितु अध्यात्म पथ के प्रत्येक पथिक के लिए अनिवार्य कहे जा सकते हैं—उनका सम्यक प्रतिपादन वंदनीया माताजी इतनी सहज-सरल भाषा में करती हैं कि पढ़ने वाले और सुनने वाले उनको दत्तचित्त होकर आत्मसात् करते दिखाई पड़ते हैं। अपने एक ऐसे ही विशिष्ट उद्बोधन में वंदनीया माताजी उपासना-साधना एवं आराधना का रहस्य बताते हुए कहती हैं कि उपासना साधक के लिए ध्रुवतारे के समान है। जो अपने जीवन में उपासना को प्रतिष्ठित कर लेता है, उसके लिए साधना और आराधना का पथ भी सहज, सुगम हो जाता है। वे प्रत्येक साधक को पूज्य गुरुदेव से प्रेरणा लेकर एक साधक की जीवनशैली अपनाने को कहती हैं। आइए हृदंयगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....।

अंदर की शक्ति पहचानें

चल बेटा, मैं दूसरा उदाहरण सुनाती हूँ। देख दूसरा उदाहरण विवेकानंद थे। जब तक गुरु की शक्ति उनके अंदर नहीं आई, जब तक उन्होंने अपने को नहीं पहचाना, तब तक गरीब जाने क्या-क्या माँगता रहा है, नौकरी माँगता रहा और जाने क्या-क्या माँगता रहा। बेटा! जब उनके गुरु की शक्ति आई तो सारे देशों में अपने गुरु के काम से घूमते रहे। अमेरिका गए तो एक लड़की उनके पीछे पड़ गई। जब तक कि अपनी दृष्टि सही होती है, तब तक पीछे पड़ने वाला कोई इस संसार में है ही नहीं।

जब अच्छी बात हमारा पीछा नहीं कर सकती तो बुरी कैसे कर सकती है ? हमारे ऊपर बुरी बात का असर कैसा हो गया ? अच्छाइयों का असर देर में होता है और बुराई का असर बहुत जल्दी हो जाता है। उसको हम बहुत जल्दी ग्रहण कर लेते हैं। जाने इसमें बहुत सुगंधता है क्या ? ऐसा ही कुछ होगा। चूँकि अच्छाइयों को ग्रहण करने में कड़ाई करनी पड़ती है, पर बुराई में कड़ाई नहीं करनी पड़ती। बेटे उनके भी मन में कुछ प्रलोभन आया होगा, उसकी शक्ल को देख करके काम-वासना जाग्रत हुई होगी, लेकिन बेटे उनके विवेक ने काम किया।

उन्होंने कहा कि मैं तो गुरु का काम करने आया था, यह गंदगी नहीं चल सकती तो बेटे वो गरम तवे पर बैठ गए। जलते हुए तवे पर बैठ गए और बेटे उनके पुट्ठों पर फफोले पड़ गए। उन्होंने

कहा कि इसकी यही सजा है। यह कल्पना आई कैसे और यह कल्पना आई है तो उसका परिणाम भी भोगना चाहिए। उसके परिणाम भोगने के लिए वे स्वयं जलते तवे पर बैठ गए।

भगवान—संवेदना का नाम

तीसरा उदाहरण बेटे, सदन कसाई का है जो रोजाना मार-काट करता था। सैकड़ों पशुओं को मार देता था। बकरे-बकरी, गाय, भैंसे जो भी मिल जाए, सबको मारना उसका धंधा ही था, लेकिन बेटे जिस दिन उसके अंदर भगवान आ गया, उसने कहा कि नहीं अब ये हत्याएँ नहीं होंगी। अब यह मेरे बस का नहीं है। चूँकि बेटे भगवान जब आता है तो संवेदना के रूप में आता है, उदारता के रूप में आता है और इस खुशहाल संसार को और खुशहाल बनाने के लिए आता है, न कि खुदगर्जी के लिए आता है।

पिता ने कहा कि सदन भूख से हमको मारेगा क्या? उन्होंने कहा कि तू रोज मांस खिलाता था और आज नहीं खिलाएगा तो जिंदा कैसे रहेंगे? उसने कहा कि पिताजी मैंने प्रण किया है कि आज से मैं किसी भी पशु की हत्या नहीं कर सकता। तो नहीं करेगा? बुजुर्ग ताव में आ गए। उन्हें क्या मालूम कि अच्छाई क्या है कि बुराई क्या है? उसने कहा कि आप मांस खाए बगैर नहीं मानेंगे? हम नहीं मान सकते हैं।

बेटे! उसने अपना पैर काटकर के अपने पिता के हवाले कर दिया और कहा कि राक्षस खा इसको। उनने कहा कि अपने बेटे की टाँग खाऊँ तो बेटे ने कहा कि पिताजी, वो भी तो किसी के बच्चे हैं, जिनको रोज-रोज अब तक आप खाते रहे और दूसरों को खिलाते भी रहे हैं। क्या वो अपनी माँ के बच्चे नहीं हैं? वो अपने पिता के बच्चे नहीं हैं। आपने यह फैसला कैसे किया कि मैं ही आपका बच्चा हूँ और इनमें आपने झाँककर के नहीं देखा कि ये भी किसी के बच्चे हैं? इनके अंदर भी जीवात्मा है। बेटे उसके पिता की आँखें खुल गईं।

उपासना का दूसरा स्वरूप साधना

बेटे, मैं क्या कह रही थी? मैं यह कह रही थी कि उपासना का दूसरा स्वरूप है साधना। साधना करिए। बेटे, जब तक आप साधना नहीं करेंगे तो उपासना आपकी अधूरी है। वो एकांगी है। अभी तक उपासना के बारे में हमको गुमराह किया गया है। गुमराह कैसे? पलायनवादी बनिए, माला घुमाई है तो स्वर्ग में जाइए। फिर क्या करिए? माला घुमाइए, बेटा-बेटी लीजिए। और भी कुछ है क्या? धन-दौलत ले लीजिए। पाँच बेटियाँ हैं, छठा बेटा ले लो।

अरे इसी के लिए आए थे क्या? बेटे, यह गलतफहमी है, मैं तो कहती रहती हूँ कि कृपा करके आप गलतफहमी को निकाल दें, यह गलतफहमी नहीं चलेगी। भगवान की जो उपासना है, वो जीवात्मा के परिष्कार के लिए होती है, इसके लिए नहीं होती। आपको जो वरदान मिलेगा, जो आपको अनुदान मिलेगा वो किसी दूसरे का मिलेगा। आपको मिलेगा क्या? आपको नहीं मिलेगा।

अपने को साधिए

मैंने उसी रोज आपसे कह दिया था कि केवल ढाई रुपया रोज हिसाब से मिलेंगे। आपने 27 माला रोज की हैं, वो भी आपने ईमानदारी से नहीं की हैं। बेईमानी से की हैं। सारा-का-सारा लंगड़-खंगड़ आपकी खोपड़ी में भरा है, तो आपने वो भी नहीं किया तो ले जाइए ढाई रुपये और अपने-अपने घर जाइए। और कुछ मिलेगा? इससे ज्यादा कुछ भी नहीं मिलेगा।

इससे ज्यादा बेटे तब मिलेगा, जब ढाई घंटे तो आपने जप किया है और बाकी का वक्त अपनी

धुलाई की है। रँगाई करिए, साधना कीजिए, सोचिए कि मनुष्य शरीर हमें किसके लिए मिला है? आखिर इसका होना क्या है।

बेटे! इसका तो एक दिन वो होना है, जो सबका होना है। क्या होना है? देख पशु की खाल काम में आती है, जूते बनते हैं, पर्स बनता है। जाने क्या-क्या बनता है, चमड़े की पेटियाँ बनती हैं, हजारों चीजें बनती हैं और मनुष्य का? बेटे! मनुष्य का कुछ नहीं बनता। मनुष्य जिस दिन मरता है, उस दिन साथ में दस-बीस मन लकड़ी और ले जाता है। जलाने के लिए लकड़ी चाहिए, घी चाहिए। समिधा चाहिए, सामग्री चाहिए, कफन चाहिए, काठी चाहिए और कमबख्त अकेला जाता भी नहीं है, ये भी नहीं है, साथ में और चाहिए।

उसे सिर पर उठाने के लिए चार आदमी आगे-पीछे चलते हैं और पूरी बरात चलती है। तो बेटे मनुष्य के शरीर का क्या होने वाला है? तो उसके लिए चिंतन कीजिए कि एक दिन आपका भी यही होने वाला है। फिर होश में आ जाइए और साधना कीजिए, अपने को साधिए और लोक-मंगल के काम में लगिए।

गुरुजी-माताजी एक हैं

उनने कहा कि माताजी आप ये पाठ पढ़ा रही हैं, ऐसे तो गुरुजी कहते थे। अरे बेटे, गुरुजी और हम एक हैं, तुमने दो कैसे समझ लिया? भाषा की दृष्टि से समझ सकते हैं, योग्यता की दृष्टि से समझ सकते हैं, पर हम हैं तो दोनों एक। सिद्धांत एक हैं, भावनाएँ हमारी एक हैं, क्रियाकलाप हमारे एक हैं तो आपने दो कैसे समझ लिया? हम एक ही हैं बेटे, वास्तविकता आपको समझनी पड़ेगी।

वास्तविकता को जब आप समझ लेंगे तो बेटे! भगवान आपकी रग-रग में आ जाएगा। आपके साथ गुरुजी, गायत्री माता हर समय आपको दुलार करती हुई मालूम पड़ेंगी और माताजी को तो आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं। बेटे! आपको अनुभव होता रहेगा कि हमारी माँ हमको दुलार रही हैं। हमारे दु:ख-कष्टों में सहारा बनेंगी, लेकिन आप भी तो कुछ करिए न? भगवान का प्यार पाने के लिए बेटे भक्त को कुछ करना पड़ता है। ऐसा नहीं होता कि भगवान की भक्ति करें और भक्तों को कुछ न करना पड़े। भक्तों को करना पड़ता है।

बेटे, क्या करना पड़ता है? जब भक्ति आ जाती है तो बेटे भक्ति का ऐसा नशा होता है जैसे शराब का नशा होता है और ये ऐसे झूमते रहते हैं। कोई नाली में गिरता है, कहीं क्या करता है, कोई पैरों से डगमगाते रहते हैं। बेटे! ठीक इसी प्रकार मैं तो कहूँगी कि अध्यात्म में इससे हजार गुना नशा रहता है। जब भगवान आ जाएगा तो बेटे, हजार गुना नशा रहेगा। जीवन में फिर वो क्या काम कराएगा, कैसे कराएगा? जैसा चैतन्य महाप्रभु से कराया था।

चैतन्य महाप्रभु के अंदर जब भगवान आया तब बेटे उन्होंने अलख जगाया। काहे का? भगवान के कीर्तन का। भगवान जो नहीं कर सकते थे, उसे करने के लिए उन्होंने कहा कि हम भगवान के बेटे हैं। नहीं साहब गुरुजी की भक्ति करेंगे और गुरुजी को तो प्रणाम करेंगे और गुरुजी को फूल चढ़ाएँगे। गुरुजी सब सौंप दिया भगवान तुम्हारे हाथों में। गुरुजी लड़की भी सौंप दिया, सब सौंप दिया। जानता है सब सौंपना किसे कहते हैं? संकीर्णता सौंप। जो तेरे अंदर में संकीर्णता विराजमान है, उसे निकाल धूर्त कहीं का। यहाँ कहने आया है कि गुरुजी साहब हमने अपने आप को सौंप दिया, आप हमारे हैं।

गुरु का ऋण चुकाइए

हाँ, हम तुम्हारे हैं, लेकिन अपने को सौंप तो सही। तो हो जाओ नंगे, अपने बाप के सामने। और क्या कहना? हाँ गुरुजी हम आपके हैं, आप जो चाहे कराइए। बेटे, फिर देखना गुरुजी कैसे कराते हैं। बेटे! गुरुजी ने अपना सर्वस्व अपने गुरु के चरणों में सौंप दिया। बिलकुल खाली हाथ हैं, तीन धोती और दो कुरते के अलावा और कुछ नहीं है और बेटे जो दो साल का बच्चा खाता होगा, मैं समझती हूँ कि वो कुछ ज्यादा खा जाता होगा। दो साल के बच्चे जितनी उनकी खुराक है।

मैं यह नहीं कहती कि आप भी ऐसा ही करिए, आप भी दो साल के बच्चे की तरह से अपना पेट पालिए, पर मैं ये कहती हूँ कि अपने गुरु के प्रति, अपने मिशन के प्रति और उन विचारों के प्रति वो इच्छाशक्ति जाग्रत होती है कि गुरुजी हम आपके बच्चे हैं। अरे! कितने बच्चे तो यहीं बैठे हैं और जो लाखों-करोड़ों की संख्या में हमारे बालक हैं वो तो जाने क्या-क्या कर सकते हैं? लेकिन आपकी संकीर्णता हटे तब न, आपकी संकीर्णता हटती नहीं है।

वो तो पग-पग पर चलती है, जो कुछ होगा बीबी के लिए होगा, बच्चे के लिए होगा, नाती-पोतों के लिए होगा और समाज के लिए भी होगा क्या? नहीं समाज से हमें क्या लेना-देना, जिस समाज में हमने जन्म लिया है और जब तक मरेंगे, समाज का ही उपयोग करेंगे। तो बेटे क्या समाज का हमारे ऊपर कोई ऋण नहीं है? इसको बगैर चुकाए ही संसार से जाना चाहते हैं। जाना चाहते हैं तो बेटे जाइए, गुरु का ऋण ले जाइए, समाज का ऋण ले जाइए, लेकिन याद रखना अगले जन्म में आपको देना पड़ेगा। आप बनिए गधा, फिर गुरुजी आप में लगाएँगे डंडे। क्या बात है? अरे बात क्या है, जो ऋण लेकर के आया था सो चुकाया नहीं, अब पछता।

बेटे! अगले जन्म की अपेक्षा तो इसी जन्म को आप सार्थक लें तो हर्ज की क्या बात है? मैं तो आपको थोड़ी दिशा और धारा दे रही थी कि आप चिंतन करिए, अपने को साधिए। जब तक आप नहीं साधेंगे, तब तक आपके अंत:करण में वो भावना ही पैदा नहीं होगी कि हमको कुछ करना भी है क्या? हमें क्या, हम तो अपने घर में चैन से हैं।

इदं तीर्थं इदं तीर्थं
भ्राम्यन्ति तामसा जनाः।
आत्मतीर्थं न जानन्ति
कथं मोक्षः शृणु प्रिये॥

अर्थात भगवान शंकर, माँ पार्वती से कहते हैं कि हे प्रिये! मूर्ख लोग यह तीर्थ है, यह तीर्थ है, ऐसा समझकर भटकते रहते हैं; जबकि सच्चा तीर्थ तो केवल अपनी आत्मा है। उसे स्मरण रखने की आवश्यकता है।

दूसरे के घर में आग लग रही है तो लगने दो, दूसरों की बहन-बेटियों की इज्जत लुट रही है तो लुटने दो, हमारी थोड़ी लुट रही है। नहीं बेटे, आज नहीं तो कल आप भी चपेटे में आ ही जाएँगे। ऐसा क्यों नहीं सोचते कि दूसरे की बेटी है तो हमारी भी तो बेटी है, दूसरे की बहू है, वो हमारी भी बहन और बेटी होती है, ऐसे कैसे हो सकता है? देखा जाएगा, हम किसी की इज्जत नहीं जाने देंगे। ऐसी

क्या बात है कि जरा-जरा से गुंडे हमारे ऊपर हावी हो जाते हैं।

कैसे हो जाएँगे? हम इतने हैं, देखिए कैसे हो सकता है? बेटे! हमारा मनोबल साथ नहीं देता, जहाँ थोड़ा घुड़की दी कि डर के मारे हमारे प्राण निकल गए, उसके प्राण निकल गए। क्यों निकल गए? हमारे और उसके मनोबल ने साथ नहीं दिया और मनोबल साथ दे जाए तब? तब बेटे! फिर तो दयानंद की तरह से हो जाएँगे।

साधना का बल

दयानंद की तरह से कैसे हो जाएँगे? एक बार दयानंद एक राजा के यहाँ गए और राजा जो था वह एक वेश्या में आसक्त था। तो दयानंद से नहीं रहा गया। वे बोले कि क्यों रे कुत्ते, इस कुतिया के पीछे क्यों लगा फिरता है? राजा से कहा, किनने? दयानंद ने। बेटे दयानंद ने नहीं कहा था, उनके अंदर जीवात्मा बैठी थी, उपासना से उन्होंने अपने को परिष्कृत किया था और जो उन्होंने जीवन में साधना की थी, उसका बल था।

पहले तो इसी हरिद्वार में आए थे और उन्होंने पाखंडखंडिनी झंडा लगाया था, पर वो सफल नहीं हुआ। किसी ने नहीं सुना और जब बेटे अपने को तपा लिया तो आर्यसमाज की स्थापना की और उन्होंने वो शब्द कहे, जो मैं अभी आपसे कह रही हूँ। और बेटे राजा लज्जित हो गया। उसने सर झुका लिया और हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए अपनी गलतियों की क्षमा माँगी।

बेटे! आपके अंदर भी वो आत्मबल आ जाएगा कि आप जो कुछ कहना चाहते होंगे, धड़ल्ले से आप कहेंगे। आपको कोई भी डर नहीं होगा, पर पहले आप अपने को इस लायक बनाइए तो सही। हर समय वही भिखारीपन, लाओ संतोषी माता आप भी लाओ। हाँ! वहाँ मंसा देवी पर जाएँगे, माँ की भी बेचारी की दुर्गति बनाएँगे, माँ को स्वस्तिक लगा आएँगे, कुछ नहीं मिलेगा, रोली नहीं मिलेगी, तो गोबर ही चिपका आएँगे। नहीं बेटे! ऐसा मत करिए, ऐसा करने से आपकी जीवात्मा गिरती है, भगवान के सामने गिरती है। माँगना है तो कुछ बड़ी चीज माँगिए, शांति माँगिए, शक्ति माँगिए, भक्ति माँगिए, साहस माँगिए जो आपके जीवन में काम आए।

बेटे, जमनालाल बजाज से गांधी जी ने कहा था कि मेरे पास साधन नहीं हैं, शक्ति है और सारी शक्ति को लोक-मंगल के लिए और राष्ट्र को ऊँचा उठाने के लिए लगाने का मेरा प्रयास चल रहा है और जब तक जीवित रहूँगा, प्रयास करता रहूँगा। जमनालाल बजाज बोले—आप ऐसा क्यों कह रहे हैं, आपके पास नहीं हैं क्या? हम काहे के लिए हैं? हमारा सर्वस्व आपके लिए अर्थात राष्ट्र के लिए है। वो बेचारे क्या करते, आधी धोती पहनते थे।

बेटे, जमनालाल बजाज उनके साथ हो गए। कोई कमी आई है क्या? नहीं कोई कमी नहीं आई। गांधी जी ने अपना मनोबल बनाया और अपनी शक्ति जाग्रत की। वो संत थे और राष्ट्रपिता थे। सारे राष्ट्र को ऊँचा उठाने के लिए वे दर-दर झोली फैलाते हुए निकलते थे और जिधर निकलते थे बेटे उधर ही धन की वर्षा होती थी। क्योंकि उन्होंने अपनी संकीर्णता को छोड़ दिया था और संकीर्णता को नहीं छोड़ा होता तो बेटे, वे कौन बनते? साधारण वकील बनते, सो उनसे वकालत भी नहीं होती।

भगवान का पल्ला पकड़ें

बेटे, मैं कह रही थी कि भगवान का पल्ला पकड़ने से मनुष्य क्या-से-क्या हो जाता है। बेटे भक्त हो जाता है, देवता हो जाता है, देवता ही नहीं वो भगवान की श्रेणी में भी आ जाता है। कैसे आ जाता है? बेटे जो अपना परिष्कार कर लेते हैं, जैसे कि बुद्ध ने किया था। जिस लड़के को यह नहीं

मालूम था की यह जो लाश जा रही है, यह मरी हुई है कि जिंदा है। उसने छत पर से किसी से पूछा कि यह क्या जा रहा है। उन्होंने कहा कि यह मरा हुआ आदमी जा रहा है। मरा हुआ? मरना भी पड़ता है। हाँ! मरना भी पड़ता है और यह कौन है, जो लाठी टेककर चल रहा है? तुम्हें नहीं मालूम है कि यह बूढ़ा हो गया है। इसका शरीर बूढ़ा हो गया है। आदमी बूढ़ा भी होता है और मरता भी है। कहा— हाँ मरता भी है और यह बूढ़ा भी होता है। अच्छा ऐसा भी होता है। और बेटे उस दिन से जो आत्मबल उन्होंने पैदा किया और जो उपासना की, उससे उनका परिष्कार हुआ और उनने बौद्ध धर्म की स्थापना की। किनने? उस राजकुमार ने की, जिसको होश नहीं था जो बिलकुल बे-अक्ल था। बुद्धू था, फिर कौन हो गया? बुद्ध भगवान हो गए।

बेटे, बुद्ध भगवान हो गए और उन्होंने धर्मचक्र-प्रवर्तन किया। उनके अनुयायियों के नाम कहाँ तक आपको गिनाऊँगी बेटे? चलिए वो भगवान थे, लेकिन अंगुलिमाल तो भगवान नहीं था। संघमित्रा तो नहीं थी, महेंद्र तो नहीं था, वो तो शिष्य थे। बेटे! शिष्यों ने जब अपनी अंतरात्मा को धो लिया, तब कमाल का काम किया। तो मेरा आपसे निवेदन यही था कि जो उपासना आप करते हैं, भले से आप एक घंटा कीजिए, आधा घंटा कीजिए।

हम इस बहस में नहीं पड़ते कि आपने कितनी की, लेकिन भावपूर्ण करिए और संवेदना के रूप में उस भगवान को अपने पास लाइए, जिसकी आप आराधना करते हैं। जिसकी आप उपासना करते हैं उसको लाइए, नहीं तो आपके हाथ में कुछ नहीं लगने वाला। फिर आप वैसे ही भक्त रह जाएँगे जैसे कि अभी मैं भक्तों की और श्रेणी बताऊँगी। अभी तो वो भक्त बताए जैसे कि आप बैठे हैं।

बेटे, एक था राजा और दो थे माली। राजा आए तो उन्होंने कहा कि ऐसा मालूम पड़ता है कि इनके पास कुछ है नहीं और ये गिड़गिड़ा रहे हैं। उन्होंने कहा कि बेटे यहाँ मत गिड़गिड़ाओ, चलो मैं तुमको एक बगीचा देता हूँ और राजा ने उस बगीचे के दो हिस्से कर दिए। उन्होंने कहा कि देखो भाई ये तेरा है और ये तेरा है। तुम में से कौन इस बगीचे को खूबसूरत बना सकता है, ये मुझे देखना है। पैदावार की दृष्टि से, खाद-पानी की दृष्टि से मैं देखता हूँ कि आप किस तरीके से इसको कामयाब बना सकते हैं।

तो बेटे, दोनों बड़े खुश हो गए। ऐसे भक्त हो गए कि कुछ पूछो ही मत। जैसे कई बार लोग मेरे पास आते हैं और रोते ही चले आते हैं। और जब मैं उनके अंदर, उनकी अंतरात्मा में झाँककर देखती हूँ तो लगता है कि ये तो छूछे हैं, भावनाओं की दृष्टि से बिलकुल खाली हैं। ये तो ढोल के आँसू जैसे बहा रहे हैं और भावनाओं की दृष्टि से भी जड़ हैं। इनके ऊपर कोई असर नहीं है। न गुरुजी का असर है, न गुरुजी की भावनाओं का असर है। न गुरुजी के क्रियाकलापों का है, न गुरुजी के सिद्धांतों का इनके ऊपर कोई असर है। बेटे मैं देखती रहती हूँ। (क्रमशः)

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥

—ईशोपनिषद्

अर्थात जो व्यक्ति विद्या और अविद्या दोनों को साथ जानता है, वह अविद्या से मृत्यु को पार कर जाता है और विद्या से अमरत्व प्राप्त करता है।

सद्गुण और समृद्धि साथ-साथ

सद्गुण और समृद्धि साथ-साथ भविष्य की भवितव्यता हैं। अभी की स्थिति में ये दोनों अलग-अलग दिखाई देते हैं। सद्गुण जहाँ-जहाँ हैं, वहाँ-वहाँ समृद्धि के दर्शन प्रायः दुर्लभ ही रहते हैं। इसी तरह जहाँ समृद्धि है, वहाँ सद्गुणों का स्थान व्यवहार व व्यावहारिकता में कहीं नजर नहीं आता। इनकी स्थापना शब्दों तक ही सीमित रहती है। सारे सद्गुण कहीं पुस्तकों के पन्नों में छिपे-दुबके रहते हैं। अब तो समृद्धि और संपन्नता के कारोबार में ज्यादातर दो शब्दों का प्रचलन काफी तेजी से बढ़ा है। इनमें से एक है—शॉर्टकट और दूसरा है—प्रैक्टिकल होना। इन दोनों शब्दों का सही-सही माने—मतलब तो वही लोग समझते होंगे, जिन्होंने इसे अपनाया हुआ है; परंतु सामान्य समझ इनके बारे में यही समझती है कि जल्दी-से-जल्दी, किसी भी कीमत पर सब कुछ हासिल कर लेना।

इस चक्कर में जीवनव्यापी असंतुलन उत्पन्न हुआ है। जीवन में संतुलन और सुव्यवस्था बिगड़ी है। धन मिल जाने के बावजूद जिंदगी की खुशियाँ छिन गई हैं। सफलता की अंधी दौड़ में संबंधों के स्नेह-सूत्र बुरी तरह से टूटे और उलझे हैं। कुछ विचित्र-से वातावरण में मनुष्य अपनी मनुष्यता गँवाता जा रहा है। इस अँधेरी आँधी में फँसकर हम सब पता नहीं कहाँ पहुँच गए हैं। वर्तमान का परिदृश्य हमें केवल शरीर के रोगी होने, मन के बेचैन होते रहने, अपनेपन-अपनत्व के कहीं खो जाने की सूचना दे रहा है। इन राहों पर चलने पर आरंभ की सफलताएँ, पाई जाने वाली समृद्धि अवश्य उत्साहित करती हैं; परंतु अंत तक पहुँचते-पहुँचते परिणाम इस उत्साह को, अब तक मिली खुशियों को एक-एक करके छीनते जाते हैं।

सफलता-संपन्नता और समृद्धि जीवन में कुछ है, सब कुछ नहीं। इसके अलावा स्वास्थ्य, संबंध, परिवार का प्रेम, अपनों का अपनत्व जैसा और भी बहुत कुछ है। जीवन तभी संपूर्ण होता है, जब ये सब साथ-साथ रहते हैं। अकेलेपन में कोई भी सफलता खुशी नहीं दे पाती। खुशी का अनुभव तब होता है, जब इसे अपनों के बीच बाँटा जाए। अपनों के अपनत्व के बीच इसे साझा किया जाए। जीवन के परिदृश्य, परिस्थितियों में इस सच्चाई को हम खुली आँखों से देख सकते हैं कि सद्गुणी-सज्जनों के जीवन में ही पास के और दूर के संबंध टिकते हैं। दुर्गुणी-दुर्जनों से न तो कोई पास वाला संबंध निभाना चाहता है, और न कोई दूर वाला उनके साथ खड़ा होना चाहता है। स्वार्थी लोगों के साथ स्वार्थी लोगों का ही मेल-मिलाप संभव होता है और ऐसे लोग समय-कुसमय आपस में एकदूसरे को घाव—घात देते रहते हैं। जीवन में आगे बढ़ने के लिए अनेकों का साथ चाहिए। जब जीवन में भरोसेमंद लोग मिलते हैं, तभी संपन्नता की डगर पर चलना संभव होता है।

सबका साथ पाने के लिए, इसके टिके रहने के लिए व्यक्ति के व्यक्तित्व में सद्गुणों का होना जरूरी है। समृद्धि की राह पर बढ़ने के लिए पहली जरूरत—उत्तम स्वास्थ्य है, जिसकी प्रायः अनदेखी की जाती है। जबकि कड़ी मेहनत सही स्वास्थ्य के बिना संभव नहीं है। इसके बाद की जरूरत है—मन की सही सोच। ऐसी सोच, जिसमें स्थितियों

का सही-सही आकलन करने की क्षमता हो, दूरदर्शिता हो। किए जाने वाले कार्य एवं इसके होने वाले परिणाम को समझने की क्षमता हो। प्रत्येक छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी बात का सही आकलन करने की योग्यता हो।

व्यक्तित्व की इन योग्यताओं के साथ कुछ अन्य योग्यताएँ भी जुड़नी चाहिए। जैसे कि मिलनसार मधुर स्वभाव। सबसे घुल-मिलकर, हिल-मिलकर रहने की आदत। नेतृत्व करने की काबिलियत, ताकि काम करने के साथ साथियों का मार्गदर्शन करते हुए उनसे काम कराया भी जा सके। दबाव-तनाव में काम करने और काम करवाने की योग्यता। इन सभी योग्यताओं में सर्वप्रथम और सर्वाधिक श्रेष्ठ है—प्रामाणिकता, जिसे व्यवसाय की भाषा में साख या भरोसा कहते हैं। इस साख या भरोसे के दो आयाम हैं—पहला, निजी यानी कि स्वयं का, दूसरा है—समूह का। दोनों आयामों में वचनबद्धता-प्रतिबद्धता होना आवश्यक है। सक्षम व्यक्तित्व एवं सक्षम कार्यकुशलता के आधार पर ही यह संभव है। इन सबको सार रूप में कहा जाए; तो योग्य बनना, योग्य बनाना और अपने साथ अपने समूह की योग्यता को बार-बार खरा प्रमाणित करने पर समृद्धि के द्वार खुलते हैं।

योग्यता के सभी आयाम तभी स्थिर रह पाते हैं, जब ये सद्‌गुणों के सबल आधार पर टिके हों। सद्‌गुणों के बिना समृद्धि जुटाने की कोशिश केवल चोरी-ठगी, सेंधमारी, उठाईगीरी जैसे अनर्गल प्रयास ही बनी रहती है; जिसका प्रारंभ भले ही कितना अच्छा हो, लेकिन उसके अंतिम परिणाम कभी अच्छे नहीं हो पाते। इसलिए निर्विवाद सत्य यही है कि समृद्धि को स्थिरता व स्थायित्व केवल सद्‌गुणों का साथ पाकर ही मिलता है। अभी इसे भले कम समझा जा रहा हो या न समझा जा रहा हो, परंतु समय के साथ सतयुग की वापसी होने पर इसे समझना आवश्यक और अनिवार्य हो जाएगा।

पुरातन वेदों में यही सच समझाया गया है। घर में सभी जनों के लिए 'श्रम' की अनिवार्यता सिद्ध करते हुए ऋग्वेद का मंत्र है—

कारुरहं ततो भिषग् उपलप्रक्षिणी नना।
नानाधियो वसूयवोऽनु गा इव तस्थिम॥

(ऋग्वेद 9.112.3)

मंत्र का कथन है कि मैं शिल्पी हूँ, पिता वैद्य हैं और माता चक्की पीसती हैं। घर की आय के लिए हम विविध कार्य करते हैं।

अथर्ववेद में श्रमजीवियों या शिल्पियों की आर्थिक स्थिति उत्तम थी। उन्हें 'पुरुदमासः' अर्थात अनेक भवन या कोठियों वाला कहा गया है।

सूचना

सभी भाइयों से निवेदन है कि पत्र व्यवहार में ई-मेल व व्हाट्सएप भेजने में अपने मोबाइल नंबर, व्हाट्सएप नंबर, ई-मेल, पिनकोड का उल्लेख अवश्य करें, ताकि समय से सूचना का आदान-प्रदान हो सके।

समृद्धि के लिए आवश्यक सद्‌गुणों के उल्लेख में अथर्ववेद ने पहला सद्‌गुण (1) **चरितम्**—चरित्र या व्यवहार की शुद्धि कहा है—**'शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च'**। (अथर्ववेद-3.15.4)। व्यापार में प्रामाणिकता इसी से निर्मित होती है। (2) दूसरा सद्‌गुण **उत्थितम्**—उत्साह, दृढ़ निश्चय और साहस है। (3) **उपोह**—दूर की वस्तुओं को पास लाना, (4) **समूह**—संग्रह कला **'उपोहश्च समूहश्च'** (अथर्ववेद 3.24.7), जिसमें वस्तु और व्यक्ति को पास लाने और उन्हें समूह में रखने की कला

है, उसके पास समृद्धि भी सुनिश्चित आएगी। (5) **सूझ-बूझ और अवसरोचित कार्य करना**—वेद में इसे सौ गुना लाभ देने वाली देवी कहा है—**'इमां धियं शतसेयाय देवीम्।'** (अथर्ववेद 3.15.3)। (6) **अधिक लोभ त्याज्य**—समृद्धि के लिए अधिक लोभी होने वाला निंदा का पात्र होता है—**'अधोवचसः पणयो भवन्तु'** (अथर्ववेद 5.11.6)। (7) मिलावट करना दंडनीय अपराध है—ऋग्वेद और अथर्ववेद में कहा है कि अन्न आदि में मिलावट दंडनीय अपराध है। एक व्यापारी ने अच्छे जौ में सड़े जौ मिलाकर बेच दिए थे। ज्ञात होने पर उसे कठोर दंड दिया गया **'कुयवं न्य स्मा अरन्धयः'** (ऋग्वेद 7.19.2, अथर्ववेद 20.37.2)।

सभी तरह के सुविचार, तर्क एवं तथ्य यह प्रमाणित करते हैं कि समृद्धि को स्थायित्व केवल सद्गुणों से मिलता है। खुशियाँ भी इन्हीं से आती हैं। भरोसा भी इन्हीं से बनता है। प्रामाणिकता की परख भी इन्हीं से होती है। अपने चारों ओर नजर डालकर देखें, तो यही पता चलता है कि बात जब भरोसे की आती है, तो दुर्गुणी-दुर्जन भी केवल सद्गुणी सज्जनों पर ही भरोसा करते हैं। सद्गुण ही यथार्थ में संतुलन व सुव्यवस्था का आधार बनते हैं। परिवार का प्रेम, मित्रों की मित्रता, सहकर्मियों का साहचर्य, अपनों का अपनत्व इन्हीं से टिकता है। इनके बिना सभी उचित—अनुचित बन जाता है और प्रामाणिकता, विश्वसनीयता लुप्त हो जाती है।

आने वाले समय में सतयुग में यह सत्य और भी प्रखर व प्रामाणिक रूप से सभी के सामने आएगा। अब और तब में भारी अंतर यह होगा कि अब सद्गुण स्वभाव बनकर नहीं, बस, विवशता बनकर उभरते हैं; लेकिन तब सद्गुण स्वभाव बनेंगे। तब सबको यह सच सहज समझ में आएगा कि जीवन तभी सफल और संपन्न माना जाएगा, जब उसमें धन के साथ प्रेम भी हो। अन्यथा अकेलेपन में बड़ा घर, बड़ी गाड़ियाँ, भारी-भरकम बैंक-बैलेन्स किसे सुख को दे पाते हैं? **'अशान्तस्य कुतः सुखम्'** का गीता वचन—**'अशांत व्यक्ति को सुख कहाँ'**—सच तो अभी भी है, लेकिन तब इसे समझा, अपनाया व स्वीकारा भी जाएगा।

सफलता-संपन्नता और समृद्धि जीवन में कुछ है, सब कुछ नहीं। इसके अलावा स्वास्थ्य, संबंध, परिवार का प्रेम, अपनों का अपनत्व जैसा और भी बहुत कुछ है। जीवन तभी संपूर्ण होता है, जब ये सब साथ-साथ रहते हैं। अकेलेपन में कोई भी सफलता खुशी नहीं दे पाती।

खुशी का अनुभव तब होता है, जब इसे अपनों के बीच बाँटा जाए। अपनों के अपनत्व के बीच इसे साझा किया जाए। जीवन के परिदृश्य, परिस्थितियों में इस सच्चाई को हम खुली आँखों से देख सकते हैं कि सद्गुणी-सज्जनों के जीवन में ही पास के और दूर के संबंध टिकते हैं।

सभी इसे समझ पाने में समर्थ होंगे कि संपन्नता व समृद्धि जीवन में प्रसन्नता का आधार तभी बनते हैं, जब उनमें संपूर्णता हो। इसकी छाप व छाया जीवन के हर आयाम पर छाई हो। ऐसा होने पर ही होठों पर हँसी और मन में खुशी स्थायी व स्थिर होती है। इसी से स्वस्थ तन, स्वच्छ मन और सभ्य समाज-सुखी समाज का निर्माण होता है। ❑

अपनों से अपनी बात

नवजाग्रति का आधार है अखण्ड ज्योति

अखण्ड ज्योति मात्र एक पत्रिका का नहीं, वरन एक ऐसे प्रकाश-स्रोत का नाम है, जिसके आलोक में हम अपनी आत्मिक चेतना, परमात्मा एवं पूज्य गुरुदेव की उपस्थिति को अनुभव कर पाते हैं, उनको एकाकार पाते हैं। सन् 1940 से अनवरत प्रकाशित होती चली आ रही ये पत्रिका जीवन मूल्यों एवं आध्यात्मिक ज्ञान धरोहर का एक ऐसा समागम प्रस्तुत करती है, जिसके संयुक्त प्रयास से ही वैचारिक प्रदूषण का निराकरण संभव है।

रेगिस्तान में यदि कहीं कोई जल-स्रोत गहरी चट्टानों के पीछे छिपा हुआ भी हो तो भी वह गरमी से चिलकती भूमि को जीवनदायिनी राहत देता है। जितनी शीतलता उस जल-स्रोत के सामीप्य से राहगीरों को मिलती है—लगभग वैसी ही शांति-सुकून का एहसास आज के तनाव, भाग-दौड़-परेशानी से भरे युग में अखण्ड ज्योति के लेखों, विचारों, भावों के आस्वादन से इनसान को मिलता है। गुरुवर के प्राणों के प्रवाह को स्वयं के भीतर समेटे हुए अखण्ड ज्योति की ज्ञानसंपदा मात्र छपे हुए कागजों का पुलिंदा नहीं, बल्कि अँधेरे में राह दिखाने वाली ज्ञानज्योति के समान है।

पिछले 89 वर्षों में न जाने कितने व्यक्तियों ने अपने जीवन की छोटी-बड़ी उलझनों का समाधान इसके पृष्ठों में पाया होगा। न जाने कितनों ने इसके पन्नों में वर्णित साधनाओं की पद्धतियों को अपनाकर आत्मिक प्रगति की राहों को प्रकाशित किया होगा। किसी युवा मन को इसकी पंक्तियों ने पथप्रदर्शक की तरह सँभाला होगा तो किसी बोझिल मन को गुदगुदाया भी होगा। बच्चों ने इसके अंदर छपने वाली छोटी कहानियों को चाव से पढ़ा होगा, घर सँभालने वाली बहनों ने गृहस्थ को तपोवन बनाने के तरीकों को इसी के पृष्ठों में ढूँढ़ा होगा।

क्या बच्चे तो क्या वृद्ध, क्या अशिक्षित तो क्या विद्वान, क्या बहनें तो क्या नौजवान—इसके पृष्ठों पर प्रत्येक के लिए सामग्री उपलब्ध रहती आई है और रहती रहेगी। यही कारण है कि यह सभी के लिए समानरूपेण प्रिय है।

हममें से हर व्यक्ति परिचित है कि वर्तमान समय की परिस्थितियाँ कितनी भयावह और कितनी भीषण हैं। इस दुर्गम समय में एक-एक घड़ी कैसे गुजर रही है, इसका एहसास सभी को है। वैचारिक विभीषिका के समय में एकमात्र यह पत्रिका ऐसी है, जो उज्ज्वल भविष्य की आशा और उमंग को जगाती है। इसकी विचार-संपदा हमें, हमारे अव्यवस्थित-अनगढ़ जीवन को सुसंस्कारित एवं सुगढ़ बनाने का पथ प्रशस्त करती है।

नए वर्ष की आहटें ऐसे में और भी नूतन प्रेरणा लेकर उपस्थित हुई हैं। अगला कैलेंडर वर्ष गायत्री परिजनों के लिए सौभाग्य की त्रिवेणी को लेकर उपस्थित हो रहा है। अखण्ड दीपक के प्राकट्य के 100 वर्ष, वंदनीया माताजी के धरती पर अवतरण के 100 वर्ष एवं पूज्य गुरुदेव की तप-साधना के 100 वर्ष का समय, प्राण-ऊर्जा के उद्दाम प्रवाह एवं प्रचंड वेग के साथ उपस्थित हुआ है।

उस प्रवाह को प्रस्फुटित करने का कार्य अखण्ड ज्योति पत्रिका का है। बिना किसी विज्ञापन के प्रकाशित होती चली आ रही इस पत्रिका को बिना किसी लाभ-हानि के परिजन पाते रहें—यह

सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी इसके लेखनतंत्र ने, ब्रह्मवर्चस ने अपने हाथ में ली है। अनेक खरचे बढ़ जाने के बावजूद भी अखण्ड ज्योति के वार्षिक चंदे में कोई बढ़ोत्तरी नहीं की जा रही है।

अखण्ड ज्योति के भावनाशील पाठकों से एक ही अनुरोध है कि वे अधिक-से-अधिक परिजनों को इसे पढ़ने के लिए प्रेरित करें।

यह पत्रिका नहीं, वरन एक ऐसी आध्यात्मिक विरासत है, जो मानवता के भविष्य के निर्माण के कार्य में निरत है। इस पवित्र कार्य में आपका ज्ञानदान ही समाज की सर्वोच्च सेवा हो सकता है।

ये युग-परिवर्तन के महान क्षण हैं। इन क्षणों में कब कौन-सा कुमति का असुर सद्विचारों के ऊपर हमला बोल दे—यह कहना कठिन है। इस अवांछित आक्रमण से बच पाने का एकमात्र सबल एवं सुगम उपाय—पूज्य गुरुदेव के सद्विचारों का सतत स्मरण ही है। आशा है कि परिजन गुरुसत्ता द्वारा प्रदीप्त इस ज्योति को ज्वाला में बदलेंगे। ❑

विलंब सूचना

विगत काफी समय से डाक-व्यवस्था चरमरा रही है। पाठकों तक समय से अखण्ड ज्योति नहीं पहुँच रही है। 31 जुलाई, 2025 से डाकघर का नया सॉफ्टवेयर प्रारंभ होने पर लंबे समय तक बुकिंग नहीं हुई। अभी भी डाकघर में अखण्ड ज्योति पड़ी हैं। अगस्त, सितंबर, अक्टूबर, नवंबर की प्रतियाँ भी अति विलंब से गई हैं। दिसंबर की प्रतियाँ भी विलंब से जा सकती हैं।

डाक विभाग के अधिकारियों से निरंतर संपर्क किया जा रहा है—आश्वासन मिल रहे हैं। अभी भी कार्य की गति धीमी है। कब तक समाधान हो सकेगा, कुछ पता नहीं।

पाठकों को हुई असुविधा के लिए हमें खेद है। आशा है, जल्दी ही स्थिति सामान्य होगी। पाठकों को उनकी प्रिय अखण्ड ज्योति समय से मिल सकेगी।

रजिस्टर्ड पैकिट

1 अक्टूबर, 2025 से रजिस्टर्ड सेवा डाक विभाग ने बंद कर दी है। अब जो पंजीकृत सुविधाएँ उपलब्ध हैं, वे कई गुना महँगी हैं, जिन्हें वहन नहीं किया जा सकता।

वार्षिक सदस्यों को रजिस्टर्ड पैकिट भेजने की व्यवस्था बनाई गई थी। अब रजिस्टर्ड बंद कर दिया गया है—अतः वार्षिक/बीसवर्षीय सदस्यों को भी रजिस्टर्ड भेजना संभव न होगा। सभी को अनरजिस्टर्ड पैकिट ही भेजे जाएँगे। वैकल्पिक व्यवस्थाओं पर मंथन चल रहा है, आशाजनक परिणाम मिलेंगे—ऐसा विश्वास है। यदि आपको अखण्ड ज्योति न मिले तो तुरंत ई-मेल-akhandjyoti@akhandjyoti-sansthan.org फोन व व्हाट्सएप नं. 9927086290 पर तुरंत सूचित करें। व्हाट्सएप नं. पर बात न हो सकेगी; केवल मैसेज ही भेजें, ताकि स्पष्ट सूचना प्राप्त होना सुनिश्चित हो एवं त्वरित कार्रवाई हो सके।

स्नेह-समर्पण की मर्यादा

माता चलेंगे पथ वही, तुमने जिसे दिखाया।
सौगंध ले रहे हैं, जाएगा नहीं भुलाया॥

उपासना-साधना-आराधना के, नियम तुम्हीं ने सिखाए,
सविता का नित ध्यान करेंगे, मंत्र तुम्हीं ने बताए,
वासना-तृष्णा, अहंकार से, बचना सतत बताया।
सौगंध ले रहे हैं, जाएगा नहीं भुलाया॥

अंशदान और समयदान की, रीति-नीति सिखाई,
बोओ और काटो की गाथा, तुमने हमें सुनाई,
कर्मों का परिणाम मिलेगा, तुमने सतत सिखाया।
सौगंध ले रहे हैं, जाएगा नहीं भुलाया॥

प्यार तुम्हारा मिला निरंतर, सुपथ बताया हमको,
उद्देश्य जिंदगी का क्या है, तुमने समझाया हमको,
संवेदना जगाई उर की, करुणा को छलकाया।
सौगंध ले रहे हैं, जाएगा नहीं भुलाया॥

याद तुम्हारी निश-दिन आती, भूल नहीं मन पाता,
कर्त्तव्यनिष्ठ और कर्मठता का, सदा निभाया नाता,
स्नेह-समर्पण की मर्यादा, खुद करके दिखलाया।
सौगंध ले रहे हैं, जाएगा नहीं भुलाया॥

—विष्णु शर्मा 'कुमार'

युगव्यास वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य
के
समग्र वाङ्मय का क्रमिक परिचय

खंड–12

गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठानपरक साधनाएँ

गायत्री महाशक्ति की जो मनुष्य उपासना करता है, उसके जीवन में कोई अभाव नहीं रह जाता । प्राचीन प्रमुख ऋषि-मुनियों की आराधना का आधार गायत्री रहा है।गायत्री की अनुष्ठानपरक साधनाएँ जानने के लिए पढ़िए–

- गायत्री की समर्थ साधनाएँ ।
- गायत्री मंगलमयी मधुविद्या ।
- गायत्री की सुगम उपासना-विधि ।
- नवरात्र पर्व पर गायत्री की विशेष साधना ।
- गायत्री अनुष्ठान का विज्ञान और विधान ।

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01 / 11 / 2025
Regd. No. Mathura - 025/2024-2026
Licensed to Post without Prepayment
No. : Agra/WPP - 08/2024-2026

ए.आई. इम्पैक्ट समिट 2026 के पूर्व-सम्मेलन कार्यक्रम एवं

"आस्था और भविष्य : आध्यात्मिकता के साथ कृत्रिम बुद्धिमत्ता का एकीकरण"

विषय पर अंतरराष्ट्रीय कार्यक्रम देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आयोजित

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक–मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा–वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक–डॉ. प्रणव पण्ड्या।

दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039

ई-मेल–akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org